बारह चक्रवर्ती

-: लेखक :-

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का हिन्दी साहित्य

1. वात्सल्य के महासागर
2. सामायिक सूत्र विवेचना
3. चैत्यवन्दन सूत्र विवेचना
4. आलोचना सूत्र विवेचना
5. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना
6. कर्मन् की गत न्यारी
7. आनन्दघन चौबीसी विवेचना
8. मानवता तब महक उठेगी
9. मानवता के दीप जलाएं
10. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है
11. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो
12. युवानो ! जागो
13. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-1
14. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-2
15. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे
16. मृत्यु की मंगल यात्रा
17. जीवन की मंगल यात्रा
18. महाभारत और हमारी संस्कृति-1
19. महाभारत और हमारी संस्कृति-2
20. तब चमक उठेगी युवा पीढी
21. The Light of Humanity
22. अंखियाँ प्रभुदर्शन की प्यासी
23. युवा चेतना
24. तब आंसू भी मोती बन जाते है
25. शीतल नहीं छाया रे.(गुजराती)
26. युवा संदेश
27. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-1
28. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-2
29. श्रावक जीवन-दर्शन
30. जीवन निर्माण
31. The Message for the Youth
32. यौवन-सुरक्षा विशेषांक
33. आनन्द की शोध
34. आग और पानी-भाग-1
35. आग और पानी-भाग-2
36. शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)
37. सवाल आपके जवाब हमारे
38. जैन विज्ञान
39. आहार विज्ञान
40. How to live true life ?
41. भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)
42. आओ ! प्रतिक्रमण करे (चौथी आवृत्ति)
43. प्रिय कहानियाँ
44. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव
45. आओ ! श्रावक बने
46. गौतमस्वामी-जंबुस्वामी
47. जैनाचार विशेषांक
48. हंस श्राद्ध व्रत दीपिका
49. कर्म को नहीं शर्म
50. मनोहर कहानियाँ
51. मृत्यु-महोत्सव
52. Chaitya-Vandan Sootra
53. सफलता की सीढ़ियाँ
54. श्रमणाचार विशेषांक
55. विविध-देववंदन (चतुर्थ आवृत्ति)
56. नवपद प्रवचन
57. ऐतिहासिक कहानियाँ
58. तेजस्वी सितारें
59. सन्नारी विशेषांक
60. मिच्छामि दुक्कडम
61. Panch Pratikraman Sootra
62. जीवन ने तुं जीवी जाण (गुजराती)

63. आवो ! वार्ता कहुं (गुजराती)
64. अमृत की बुंदे
65. श्रीपाल मयणा
66. शंका और समाधान भाग-1
67. प्रवचनधारा
68. धरती तीरथ'री
69. क्षमापना
70. भगवान महावीर
71. आओ ! पौषध करें
72. प्रवचन मोती
73. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह
74. श्रावक कर्तव्य-1
75. श्रावक कर्तव्य-2
76. कर्म नचाए नाच
77. माता-पिता
78. प्रवचन रत्न
79. आओ ! तत्वज्ञान सीखें
80. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद
81. जिनशासन के ज्योतिर्धर
82. आहार : क्यों और कैसे ?
83. महावीर प्रभु का सचित्र जीवन
84. प्रभु दर्शन सुख संपदा
85. भाव श्रावक
86. महान ज्योतिर्धर
87. संतोषी नर-सदा सुखी
88. आओ ! पूजा पढाएँ !
89. शत्रुंजय की गौरव गाथा
90. चिंतन-मोती
91. प्रेरक-कहानियाँ
92. आई वडीलांचे उपकार
93. महासतियों का जीवन संदेश
94. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन
95. Duties towards Parents
96. चौदह गुणस्थान
97. पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन
98. मधुर कहानियाँ
99. पारस प्यारो लागे
100. बीसवीं सदी के महान् योगी
101. अमर-वाणी
102. कर्म विज्ञान
103. प्रवचन के बिखरे फूल
104. कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन
105. आदिनाथ-शांतिनाथ चरित्र
106. ब्रह्मचर्य
107. भाव सामायिक
108. राग म्हणजे आग (मराठी)
109. आओ ! उपधान-पौषध करें !
110. प्रभो ! मन-मंदिर पधारो
111. सरस कहानियाँ
112. महावीर वाणी
113. सद्गुरु-उपासना
114. चिंतन रत्न
115. जैन पर्व-प्रवचन
116. नींव के पत्थर
117. विखुरलेले प्रवचन मोती
118. शंका-समाधान भाग-2
119. श्रीमद् प्रेमसूरीश्वरजी
120. भाव-चैत्यवंदन
121. Youth will shine then
122. नव तत्त्व-विवेचन
123. जीव विचार विवेचन
124. भव आलोचना
125. विविध-पूजाएँ
126. गुणवान् बनों
127. तीन-भाष्य
128. विविध-तपमाला
129. महान् चरित्र
130. आओ ! भावयात्रा करें
131. मंगल-स्मरण

ाला

132. भाव प्रतिक्रमण-1
133. भाव प्रतिक्रमण-2
134. श्रीपाल-रास और जीवन
135. दंड़क-विवेचन
136. आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें
137. सुखी जीवन की चाबियाँ
138. पांच प्रवचन
139. सज्झायों का स्वाध्याय
140. वैराग्य शतक
141. गुणानुवाद
142. सरल कहानियाँ
143. सुख की खोज
144. आओ संस्कृत सीखें भाग-1
145. आओ संस्कृत सीखें भाग-2
146. आध्यात्मिक पत्र
147. शंका-समाधान (भाग-3)
148. जीवन शणगार प्रवचन
149. प्रात: स्मरणीय महापुरुष (भाग-1)
150. प्रात: स्मरणीय महापुरुष (भाग-2)
151. प्रात: स्मरणीय महासतियाँ (भाग-1)
152. प्रात: स्मरणीय महासतियाँ (भाग-2)
153. ध्यान साधना
154. श्रावक आचार दर्शक
155. अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)
156. इन्द्रिय पराजय शतक
157. जैन-शब्द-कोष
158. नया दिन-नया संदेश
159. तीर्थ यात्रा
160. महामंत्र की साधना
161. अजातशत्रु अणगार
162. प्रेरक प्रसंग
163. The way of Metaphysical Life
164. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1
165. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2
166. आओ ! भाव यात्रा करें !! भाग-2
167. Pearls of Preaching
168. नवकार चिंतन
169. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1
170. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2
171. परम-तत्व की साधना भाग-1
172. रत्न-संदेश
172. रत्न-संदेश-भाग-1
173. गागर में सागर
174. रत्न-संदेश-भाग-2
175. My Parents
176. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-1
177. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-2
178. परम तत्त्व की साधना भाग-2
179. परम तत्त्व की साधना भाग-3
180. बाली चातुर्मास विशेषांक
181. उपधान स्मृति विशेषांक
182. नवपद आराधना
183. आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1
184. हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल
185. आई चे वात्सल्य
186. आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2
187. जैन संघ-व्यवस्था
188. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-1
189. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-2
190. संस्मरण
191. संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)
192. विवेकी बनों !
193. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3
194. लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)
195. समाधि-मृत्यु
196. कर्मग्रंथ भाग-2
197. कर्मग्रंथ भाग-3
198. आदर्श कहानियाँ
199. प्रवचन-वर्षा
200. अमृत रस का प्याला
201. महान् योगी पुरुष
202. बारह-चक्रवर्ती

दिव्य संदेश प्रकाशन

बारह-चक्रवर्ती

लेखक-संपादक

परम शासन प्रभावक, व्याख्यान वाचस्पति, दीक्षा के दानवीर

पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

के तेजस्वी शिष्यरत्न बीसवीं सदी के महान् योगी,

नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक, चिंतक एवं अनुप्रेक्षक भावाचार्य तुल्य

पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के

कृपापात्र चरम शिष्यरत्न, विपूल हिन्दी साहित्य सर्जक,

हृदयस्पर्शी प्रवचनकार **पूज्यपाद आचार्यदेव**

श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

202

प्रकाशक

दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.अेस.अेस. रोड,

चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E),

मुंबई-400 002. **Tel. 022-4002 0120**

Mobile : 9892069330

आवृत्ति : प्रथम • विमोचन : वि.सं.2074, असाढ सुदी-९
मूल्य : 64/- रु. • प्रतियां-3250 चातुर्मास प्रवेश दिन, महावीर भवन, मैसुर. दि. 21-7-2018

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता

शुल्क - 2500/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य - जैन इतिहास - जैन तत्त्वज्ञान - जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हो तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य *आचार्यदेव श्रीमद् विजय* **रत्नसेनसूरीश्वरजी** *म. सा.* द्वारा आलेखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और अर्हद् दिव्य संदेश मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चंदन एजेंसी M. 9820303451
607, चीरा बाजार, ग्राउंड फ्लोर, मुंबई-400 002.
Tel. O. 2205 6821
2. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर. M. 9867058940
3. श्री आदिनाथ जैन श्वेतांबर संघ
श्री सुरेशगुरुजी M. 98441 04021
नं.4, Old No. 38, फ्लोर, रंगराव रोड, शंकरपुरम्, बैंगलुर-560 004. (कर्नाटक)
राजेश मो.9986846379

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 2500/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.एस.एस. रोड, चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-2. **Tel. 022-4002 0120**

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमाट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

(3) राहुल वैद, C/o. अरिहंत मेटल कं., 4403, लोटन जाट गली, पहाड़ी धीरज, सदर बाजार, दिल्ली-110 006. M. 9810353108

गुरु वंदना

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रामचंद्रसूरीश्वरजी महाराजा

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

प्रकाशन सहयोगी

पालीताणा-चातुर्मास आयोजक श्री भद्रंकर परिवार

शा. कनकराजजी
सांवतराजजी लोढा (घाणेराव)

शा. महेशजी
जुगराजजी हिंगड (घाणेराव)

शा. मोहनराजजी
कांठेड (घाणेराव)

शा. संपतराजजी
परमार (दूजाणा)

शा. देवराजजी
चौहान (बाली)

शा. धनराजजी
राठोड (घाणेराव)

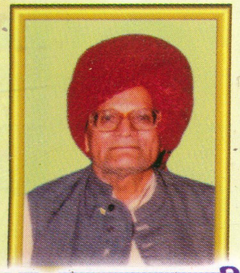

शा. सज्जनराजजी
नाहर (कुचेरा)

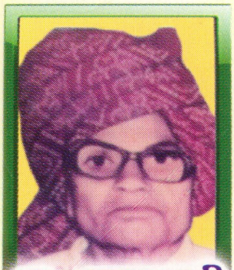

शा. बाबुलालजी
बरलोटा (ब्यावर)

शा. गौतमचंदजी
समदडिया (नागोर)

शा. भंवरलालजी
भंडारी (सांचोर)

शा. कल्याणमलजी
महेता (धनला)

एक सद्‌गृहस्थ

प्रकाशन सहयोगी

पालीताणा-चातुर्मास आयोजक श्री भद्रंकर परिवार

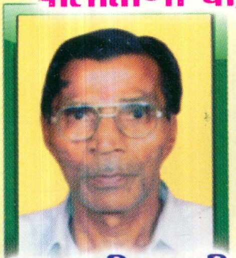

शा. खुबीलालजी
श्रीश्रीमाल (घाणेराव)

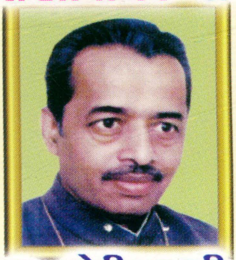

शा. मोतीलालजी
कोठारी (घाणेराव)

शा. किरणराजजी
चोपडा (बाली)

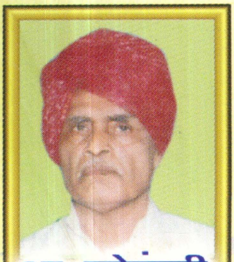

शा. वनेचंदजी
श्रीश्रीमाल (साचोडी)

शा. सोहनलालजी
चौहान (खिमाडा)

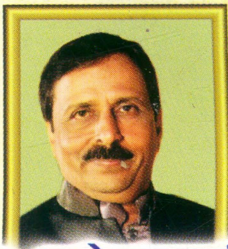

शा. अशोककुमारजी
पारेख (खुडाला)

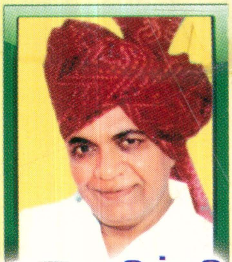

शा. हुकमीचंदजी
पारेख (खुडाला)

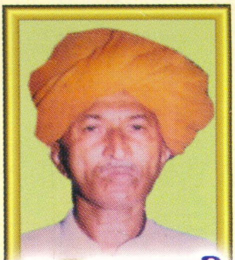

शा. वच्छराजजी
बोथरा (सांचोर)

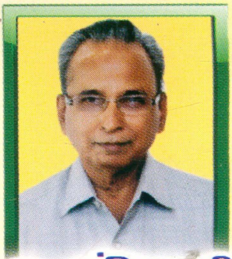

शा. कांतिलालजी
(चांदराइ)

शा. धनराजजी
रांका (सादडी)

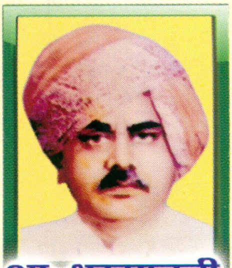

शा. भबूतमलजी
श्रीश्रीमाल (सेवाडी)

शा. शांतिलालजी
दोशी (सिरोही)

एक सद्‌गृहस्थ

प्रकाशक की कलम से...

कर्णाटक की धर्मधरा मैसूर नगरी की धन्यधरा पर चातुर्मास प्रवेश के मंगल प्रसंग पर गोडवाड के गौरव, तपागच्छ में सर्वाधिक हिन्दी साहित्य सर्जक **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित 202 वीं पुस्तक **'बारह-चक्रवर्ती'** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल की व्यवस्था हैं, एक कालचक्र में एक उत्सर्पिणी व एक अवसर्पिणी होती है । उन दोनों में 63-63 शलाका पुरुष पैदा होते है ।

उनमें 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव और 9 बलदेव होते है ।

दो वर्ष पूर्व पूज्य आचार्य भगवंत ने **त्रिषष्टि-शलाका पुरुष** आदि के आधार पर इस अवसर्पिणी काल में हुए 24 तीर्थंकरों के विस्तृत जीवन चरित्र का हिन्दी भाषा में आलेखन किया था, जो दो भाग में प्रकाशित हुआ था । उन ग्रंथों के आधार पर गत वर्ष Open Book Exam भी रखा था ।

जिसमें भारत भर के अनेक तत्त्वपिपासु श्रावक-श्राविकाओं ने भाग लेकर अपने सम्यग्ज्ञान में अभिवृद्धि की थी ।

उसी कडी में आज पूज्य आचार्यश्री द्वारा आलेखित बारह चक्रवर्तियों के विस्तृत जीवन की पुस्तक प्रकाशित कर रहे है ।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पू. आचार्य भगवंत श्री की अन्य कृतियों की भांति प्रस्तुत कृति भी खूब लोकोपयोगी और लोकोपकारक सिद्ध होगी ।

लेखक की कलम से...

प्रात:काल की मंगलवेला में हम बोलते हैं- **'अनंत चोबीसी जिन नमुं, वंदुं बे कर जोड ।'**

इसका अर्थ है भूतकाल में इस भरत क्षेत्र में अनंत चौबीसियां हो चूकी है ।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल की व्यवस्था हैं, जब कि महाविदेह क्षेत्र में सदा अवस्थित काल है अर्थात् वहां अवसर्पिणी के चौथे आरे के भाव हमेशा रहते है ।

5 महाविदेह क्षेत्र में न्युनतम 20 तीर्थंकर और उत्कृष्ट से 160 तीर्थंकर होते हैं, जब कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में सदा काल तीर्थंकर या तीर्थंकर का शासन नहीं होता है-यहां तो एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी काल के 90% काल में तीर्थंकर और तीर्थ का अभाव होता हैं मात्र 10% Period में ही तीर्थंकर व तीर्थ का अस्तित्व रहता है । उस 10% Period में यहां 63 शलाका पुरुष पैदा होते हैं ।

शलाका पुरुष अर्थात् उत्तम पुरुष !

भरत व ऐरावत में अवसर्पिणी काल में 18 कोटाकोटि सागरोपम के विरह के बाद तीर्थंकर पैदा होते हैं, जब कि उत्सर्पिणी काल के प्रारंभ में 84000 वर्ष के अंतराल के बाद तीर्थंकर पैदा होते है ।

उन्हीं 24 तीर्थंकरों के शासन में 12 चक्रवर्ती हुए ! हमारा अपना परम सद्भाग्य है कि **कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी** द्वारा संस्कृत भाषा में विरचित त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ग्रंथ संपूर्ण रुप से हमें प्राप्त हुआ है । यद्यपि उनके द्वारा विरचित 3½

करोड श्लोक प्रमाण संस्कृत साहित्य में से मात्र लगभग 5 लाख श्लोक प्रमाण साहित्य ही वर्तमान में उपलब्ध है, बाकी सब काल कवलित हो चूका है।

काल व पश्चिम की हवा के प्रभाव से जैनों में से अधिकांश लोग संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ होते जा रहे है।

ऐसी परिस्थिति में उस साहित्य के बोध के लिए प्रांतीय भाषाओं में अनुवाद होना जरुरी है।

सुना है त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ग्रंथ का अंग्रेजी व गुजराती भाषा में अनुवाद हो चूका है। परंतु हिन्दी भाषा में इस बात की कमी थी।

कई महानुभावों ने इस कार्य के लिए मुझे विनति की।

हिन्दी भाषी महानुभावों की भावना को देखकर मैंने अपना प्रयास प्रारंभ किया। दो वर्ष पूर्व 24 तीर्थंकरों का विस्तृत जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ अब 12 चक्रवर्तियों का जीवन चरित्र प्रकाशित हो रहा है।

9 वासुदेव-प्रतिवासुदेव व बलदेव का जीवन चरित्र भी यशाशीघ्र प्रकाशित करने की भावना रखता हूँ।

इनमें जो कुछ शुभ है वह स्व. परमोपकारी परम कृपालु, वात्सल्यमूर्ति भवोदधि तारक पूज्य गुरुदेव की कृपा का ही फल है। 9 वासुदेव, 9 बलदेव व 9 प्रतिवासुदेव भी पैदा होते है।

24 तीर्थंकरों के शासन काल दरम्यान पैदा होनेवाले 12 चक्रवर्तियों में जो भागवती दीक्षा अंगीकार करते हैं, वे परमगति (मोक्ष) या देवगति को प्राप्त करते है और जो दीक्षा न लेकर अत्यंत ही आसक्ति पूर्वक संसार के सुख भोगते हुए मरते हैं, वे अवश्य ही मरकर नरक में जाते है।

वासुदेव पूर्व भव में नियाणा करके आए हुए होने के कारण अवश्य ही मरकर नरक में जाते है।

बलदेव मरकर मोक्ष अथवा देवलोक में जाते हैं।

इस अवसर्पिणी काल में पहले तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभु के शासन में पहले चक्रवर्ती हुए । 12 में से 8 चक्रवर्ती मोक्ष में 2 चक्रवर्ती स्वर्ग में तथा 2 चक्रवर्ती मरकर नरक में गए है ।

	चक्रवर्ती	भावी गति	तीर्थंकर का शासन
1.	भरत	मोक्ष	ऋषभदेव
2.	सगर	मोक्ष	अजितनाथ
3.	मघवा	तीसरा देवलोक	धर्मनाथ
4.	सनत्कुमार	तीसरा देवलोक	धर्मनाथ
5.	शांतिनाथ	मोक्ष	शांतिनाथ
6.	कुंथुनाथ	मोक्ष	कुंथुनाथ
7.	अरनाथ	मोक्ष	अरनाथ
8.	सुभूम	7 वीं नरक	अरनाथ
9.	महापद्म	मोक्ष	मुनिसुव्रत स्वामी
10.	हरिषेण	मोक्ष	नमिनाथ
11.	जय	मोक्ष	नमिनाथ
12.	ब्रह्मदत	7 वीं नरक	नेमिनाथ

अंतर में यही अभिलाषा है कि उपकारी पूज्य गुरुदेव श्री कृपा वर्षा मुझ पर सदैव बरसती रहे ।

आराधना भवन
मण्ड्या (कर्णाटक)
दि. 1-5-2018

निवेदक
अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव
पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी
गणिवर्य कृपाकांक्षी
रत्नसेनसूरि

चक्रवर्ती की समृद्धि

(**'आओ लोक की सैर करे'** पुस्तक में से साभार)

चौदह रत्नों में सात एकेन्द्रिय और सात पंचेन्द्रिय रत्न हैं। निम्नलिखित चौदह रत्नों में प्रारम्भ के सात एकेन्द्रिय और अन्त के सात पंचेन्द्रिय रत्न हैं–

(1) चक्ररत्न–सेना के आगे-आगे आकाश में 'गरणाट' शब्द करता हुआ चलता है और छह खण्ड साधने का रास्ता बतलाता है।

(2) छत्ररत्न–सेना के ऊपर 12 योजन लम्बे, 9 योजन चौड़े छत्र के रूप में परिणत हो जाता है और शीत, ताप तथा वायु आदि के उपसर्ग से रक्षा करता है।

(3) दण्डरत्न–विषम स्थान को सम करके सड़क जैसा रास्ता बना देता है और वैताढ्य पर्वत की दोनों गुफाओं के द्वार खुले करता है।

(4) खड्गरत्न–यह 50 अंगुल लम्बा, 16 अंगुल चौड़ा और आधा अंगुल मोटा होता है, अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाला होता है। दूरी पर स्थित शत्रु का सिर काट डालता है। (ये चारों रत्न चक्रवर्ती की आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं।)

(5) मणिरत्न–चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा होता है। इसे ऊँचे स्थान पर रख देने से यह दो योजन तक चन्द्रमा के समान प्रकाश करता है। अगर हाथी के मस्तक पर रख दिया जाए तो सवार को किसी प्रकार का भय नहीं होता।

(6) काकिणीरत्न–छहों ओर से चार-चार अंगुल लम्बा-चौड़ा। वैताढ्य पर्वत की गुफाओं में एक-एक योजन के अन्तर पर 500 धनुष के गोलाकार 49 मंडल किए जाते हैं। उसका चन्द्रमा के समान प्रकाश जब तक चक्रवर्ती जीवित रहते हैं, तब तक बना रहता है।

(7) चर्मरत्न–यह दो हाथ लम्बा होता है। यह 12 योजन लम्बी और 9 योजन चौड़ी नौका रूप हो जाता है। चक्रवर्ती की सेना इस

पर सवार होकर गंगा और सिंधु जैसी महानदियों को पार करती है । (ये तीनों रत्न चक्रवर्ती के लक्ष्मी भंडार में उत्पन्न होते हैं ।)

(8) सेनापतिरत्न—बीच के दोनों खण्डों को चक्रवर्ती स्वयं जीतता है और चारों कोनों के चारों खण्डों को चक्रवर्ती का सेनापति जीतता है । यह वैताढ्य पर्वत की गुफाओं के द्वार दंड का प्रहार करके खोलता है और म्लेच्छों को पराजित करता है ।

(9) गाथापतिरत्न—चर्मरत्न को पृथ्वी के आकार का बनाकर, उन पर 24 प्रकार का धान्य और सब प्रकार के मेवा-मसाले, शाक-भाजी आदि दिन के पहले प्रहर में लगाते हैं, दूसरे प्रहर में सब पक जाते हैं और तीसरे प्रहर में उन्हें तैयार करके चक्रवर्ती आदि को खिला देता है ।

(10) वर्धकिरत्न—मुहूर्त भर में 12 योजन लम्बा, 9 योजन चौड़ा और 42 खण्ड का महल, पौषधशाला, रथशाला, घुड़साल, पाकशाला, बाजार आदि सब सामग्री से युक्त नगर बना देता है । रास्ते में चक्रवर्ती अपने समस्त परिवार के साथ उसमें निवास करते हैं ।

(11) पुरोहितरत्न—शुभ मुहूर्त्त बतलाता है । लक्षण, हस्तरेखा आदि (सामुद्रिक), व्यञ्जन (तिल, मसा आदि), स्वप्न—अंग का फड़कना इत्यादि सबका शुभ-अशुभ फल बतलाता है । शान्तिपाठ करता है । जाप करता है ।

(12) स्त्रीरत्न—(श्रीदेवी) वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी के स्वामी विद्याधर की पुत्री होती है । अत्यन्त सुरूपवती और सदैव कुमारिका के समान युवती रहती है । इसका देहमान चक्रवर्ती के देहमान से चार अंगुल कम होता है । यह स्त्री प्रसव नहीं करती है ।

(13) अश्वरत्न—पूँछ से मुख तक 108 अंगुल लम्बा, खुर से कान तक 80 अंगुल ऊँचा, क्षणभर में अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देनेवाला और विजयप्रद होता है ।

(14) गजरत्न—यह चक्रवर्ती से दुगुना ऊँचा होता है । महा सौभाग्यशील, कार्यदक्ष और अत्यन्त सुन्दर होता है । (यह अश्व और हाथी वैताढ्य पर्वत के मूल में उत्पन्न होते हैं ।)

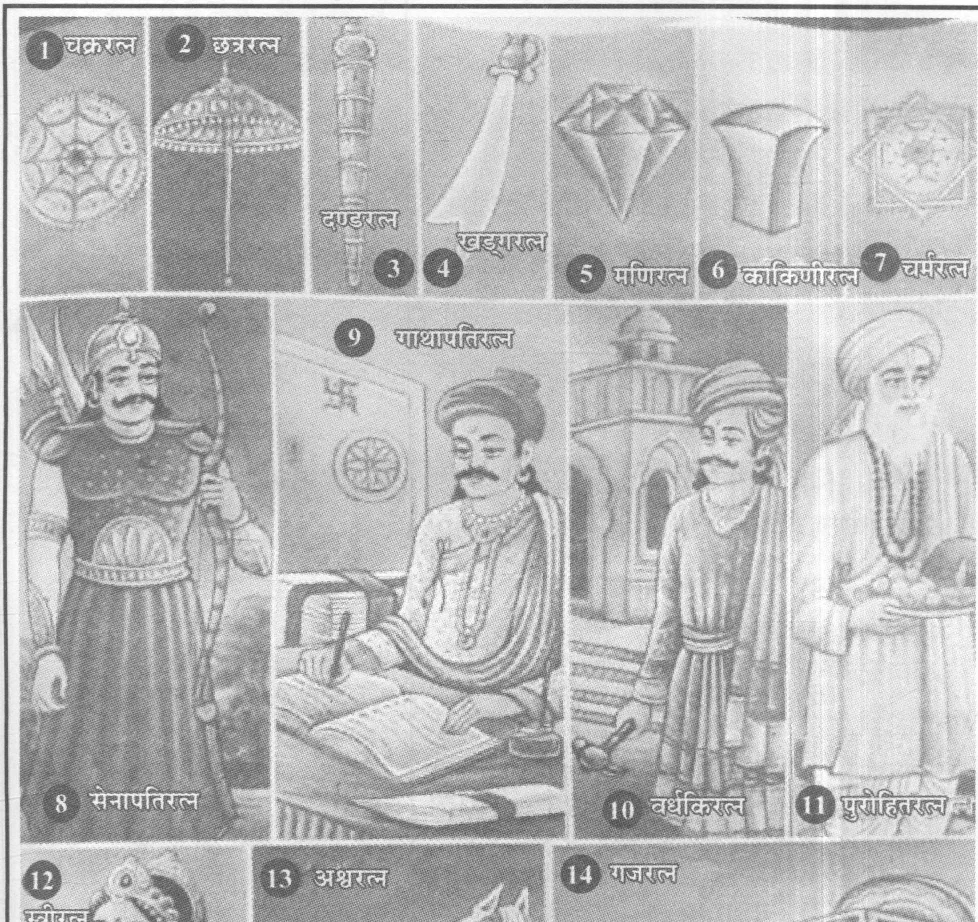
1 चक्ररत्न
2 छत्ररत्न
दण्डरत्न 3
खड्गरत्न 4
5 मणिरत्न
6 काकिणीरत्न
7 चर्मरत्न
9 गाथापतिरत्न
8 सेनापतिरत्न
10 वर्धकिरत्न
11 पुरोहितरत्न
12 स्त्रीरत्न
13 अश्वरत्न
14 गजरत्न

नौ निधियाँ

(1) 'नैसर्पनिधि' से ग्राम आदि बसाने की तथा सेना का पड़ाव डालने की सामग्री और विधि प्राप्त होती है ।

(2) 'पंडूकनिधि' से तोलने और नापने के उपकरण प्राप्त होते हैं ।

(3) 'पिंगलनिधि' से मनुष्यों और पशुओं के सब प्रकार के आभूषण प्राप्त होते हैं ।

(4) 'सर्वरत्ननिधि' से चक्रवर्ती को 14 रत्न और सब प्रकार के रत्नों तथा जवाहरात की प्राप्ति होती है ।

(5) 'महापद्मनिधि' से वस्त्रों की तथा वस्त्रों को रंगने की सामग्री प्राप्ति होती है ।

(6) 'कालनिधि' अष्टांग निमित्त सम्बन्धी, इतिहास सम्बन्धी तथा कुम्भकार आदि के शिल्प सम्बन्धी शास्त्रों की प्राप्ति होती है ।

(7) 'महाकालनिधि' से स्वर्ण आदि धातुओं की, बर्तनों की और नकद धन की प्राप्ति होती है ।

(8) 'माणवकनिधि' से सब प्रकार के अस्त्रों और शास्त्रों की प्राप्ति होती है ।

(9) 'शंखनिधि' से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधन बतलाने वाले शास्त्र की तथा प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, संकीर्ण गद्य-पद्यमय शास्त्रों की और सब प्रकार के वादित्रों की प्राप्ति होती है ।

ये नौ ही महानिधियाँ सन्दूक के समान 12 योजन लम्बे, 9 योजन चौड़े, 8 योजन ऊँचे चक्र से युक्त, जहाँ समुद्र और गंगा का समागम हुआ है, वहाँ रहती हैं । जब चक्रवर्ती अष्टमभक्त तप करके इसकी आराधना करते हैं, तब वहाँ चक्रवर्ती के पैर के नीचे आकर रहती हैं ।

चक्रवर्ती की आयु पूर्ण होने के पश्चात् अथवा दीक्षा लेने के बाद ये सब साधन अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं । चौदह रत्न और नव निधियाँ एक-एक हजार देवों से अधिष्ठित होती हैं ।

अन्य ऋद्धि

चक्रवर्ती महाराज के 2,000 आत्मरक्षक देव होते हैं । छहों खण्डों के 32,000 देशों में राज्य होता है । 32,000 मुकुटधारी राजा उनके सेवक होते हैं । 64,000 रानियाँ होती हैं । 84,00,000 हाथी, 84,00,000 घोड़े, 84,00,000 रथ, 96,00,00,000 पैदल, 96,00,000 ग्राम और भी बहुत-सी ऋद्धि चक्रवर्ती की होती हैं । इस ऋद्धि को त्याग कर जो संयम धारण करते हैं तो मोक्ष या स्वर्ग जाते हैं । अगर राज्य भोगते-भोगते मृत्यु को प्राप्त होते हैं तो नरक गति में जाते हैं ।'

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ. सं
1.	**चक्रवर्ती भरत**	1
	वैयावच्च का प्रभाव	5
	ईर्ष्या से स्त्री-वेद का बंध	6
	भरत-बाहुबली तथा ब्राह्मी-सुंदरी का जन्म	6
	वंश-स्थापना	7
	प्रभु का लग्न	7
	प्रभु का राज्याभिषेक:	8
	कला-शिक्षण	9
	दीक्षा स्वीकार	9
	भरत की नि:स्पृहता	10
	मरुदेवा माता को केवलज्ञान	12
	संघ-स्थापना	13
	छह खंड विजय	13
	सुंदरी की दीक्षा	14
	भाइयों द्वारा दीक्षा स्वीकार	16
	भरत-बाहुबली का युद्ध	18
	भरत की हार	23
	भरत का पश्चाताप	24
	अनासक्त योगी भरत	25
	अष्टापद तीर्थ निर्माण	27
	भरत महाराजा को केवलज्ञान	28
2.	**सगर-चक्रवर्ती**	30
	सामूहिक पाप का उदय	37
3.	**मघवा चक्रवर्ती**	48
4.	**सनत्कुमार चक्रवर्ती**	49
	आत्म-कल्याण की लगन	50
5.	**शांतिनाथ-चक्रवर्ती**	54
6.	**कुन्थुनाथ चक्रवर्ती एवं 17 वें तीर्थंकर**	68
	कुंथुनाथ चरित्र	69
	तीसरा भव	69
7.	**श्री अरनाथ चक्रवर्ती और 17 वें तीर्थंकर**	73
	अरनाथ चरित्र	74
	तीसरा भव	75
8.	**सुभुम-चक्रवर्ती**	78
9.	**महापद्म-चक्रवर्ती**	83
10.	**दसवे चक्रवर्ती-हरिषेण**	89
11.	**जय चक्रवर्ती**	93
12.	**ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती**	94
	(2) अशुभ निमित्त	98
	(3) पतन	100

1. चक्रवर्ती भरत

जंबुद्वीप ! महाविदेह क्षेत्र ! क्षितिप्रतिष्ठित नगर !! उस नगर में ईशानचंद्र नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा का यश चारों दिशाओं में फैला हुआ था।

उसी नगर में वैद्यकला में कुशल **सुविधि** नाम का वैद्य रहता था।

वज्रजंघ (ऋषभदेव प्रभु की आत्मा) की आत्मा पहले सौधर्म देवलोक में अपने आयुष्य को पूर्णकर **सुविधि** वैद्य के यहाँ पुत्र के रूप में पैदा हुई। उसका नाम **'जीवानंद'** रखा गया।

उसी समय उस नगरी में अन्य चार उत्तम आत्माओं का भी जन्म हुआ।

ईशानचंद्र राजा की कनकावती रानी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम **'महीधर'** रखा गया।

सुनासीर मंत्री की पत्नी लक्ष्मी ने एक पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम **सुबुद्धि** रखा गया।

सागरदत्त सार्थवाह की पत्नी अभयमती ने **पूर्णभद्र** नाम के पुत्र को जन्म दिया।

धन नाम के श्रेष्ठी की पत्नी शीलमती ने **गुणाकर** नाम के पुत्ररत्न को जन्म दिया।

श्रीमती की आत्मा का पहले देवलोक से च्यवन हुआ और वह ईश्वरदत्त श्रेष्ठी के यहाँ **केशव** नाम के पुत्र के रूप में पैदा हुई।

पूर्व के पुण्योदय से उन छहों के बीच परस्पर गाढ़ मैत्री हो गई।

जीवानंद वैद्य वंशानुगत वैद्य के धंधे में अत्यंत ही निपुण था। आयुर्वेद तथा सभी औषधियों के रस, वीर्य और पाक आदि का पूरा ज्ञान उसने प्राप्त किया था।

एक बार वे सभी छह मित्र जीवानंद वैद्य के घर में प्रसन्नता पूर्वक वार्तालाप कर रहे थे। तभी एक महात्मा गोचरी के लिए पधारे। वे महात्मा

पृथ्वीपाल राजा के **गुणाकर** नाम के पुत्र थे । लक्ष्मी की चंचलता और संसार की असारता को जानकर उन्होंने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी । दीक्षा अंगीकार करने के बाद उन्होंने उग्र कोटि का तप किया । उग्र तप और अंत-प्रांत भिक्षा आदि के कारण उनके पूरे शरीर में कृमि का भयंकर रोग फैल गया...परंतु देह के प्रति निर्मम बने हुए वे महात्मा किसी भी प्रकार की चिकित्सा कराने के लिए उत्सुक नहीं थे, वे अत्यंत ही समतापूर्वक रोग की भयंकर पीड़ा को सहन कर रहे थे ।

महात्मा की काया को रोग-ग्रस्त देखकर राजपुत्र ने जीवानंद वैद्य को कहा, ***``परोपकार बुद्धि से चिकित्सा करनेवाले वैद्य को धर्म, धन और यश तीनों की प्राप्ति होती है ।''***

``हे जीवानंद ! तू धर्म का आश्रय कर और व्याधिग्रस्त महात्मा की चिकित्सा कर ! इस चिकित्सा से ये महात्मा रोगमुक्त बनेंगे और इसके फल-स्वरूप तुम्हें भी महान् पुण्य होगा ।''

राजपुत्र महीधर की यह बात सुनकर जीवानंद वैद्य खुश हो गया और उसने उसी समय महात्मा की चिकित्सा करने का संकल्प किया ।

वैद्य ने कहा, ``मेरे पास लक्षपाक तैल तैयार है, किंतु अन्य दो वस्तुएँ गोशीर्ष चंदन और रत्नकंबल नहीं हैं, तुम ये दो वस्तुएँ लेकर आ जाओ, उसके बाद मैं उन महात्मा की आसानी से चिकित्सा कर सकूंगा ।''

जीवानंद वैद्य की इस बात को सुनकर वे पाँचों मित्र बाजार में चले गए ।

वे एक वृद्ध की दुकान पर गए । उस वृद्ध वणिक् ने उन दोनों वस्तुओं का मूल्य एक-एक लाख सोना मोहर बतलाया ।

इसके साथ ही उस वृद्ध ने पूछा, ``आपको ये वस्तुएँ किसके लिए चाहिए ?''

राजकुमार ने कहा, ``हमें एक रोगग्रस्त महात्मा की चिकित्सा करनी है, उसके लिए इन वस्तुओं की जरूरत है ।''

वणिक् ने कहा, ``आपको धन्यवाद है । इस तरुण अवस्था में तुम्हें सेवा की भावना पैदा हुई है, आप ये दो वस्तुएँ खुशी से ले जाओ, इनका

मूल्य चुकाने की आवश्यकता नहीं है । ग्लान मुनि की सेवा में इतना लाभ तो मुझे भी मिलना चाहिए ।'' इतना कहकर उस वणिक् ने वे दोनों कीमती वस्तुएँ राजपुत्र आदि को अपनी ओर से भेंट दे दीं । उसके बाद उस वणिक् ने अपना शेष धन भी धर्ममार्ग में लगा दिया और भागवती दीक्षा अंगीकार कर उसने अपना आत्मकल्याण किया ।

रत्नकंबल और गोशीर्ष चंदन लेकर जीवानंद आदि छह मित्र वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग ध्यान में मग्न गुणाकर मुनि के पास आए ।

उन्होंने हाथ जोड़कर मुनि भगवंत से विनंति की, ``हे ध्यान-मग्न मुनिवर ! यद्यपि आप इस देह के प्रति निर्मम हो, फिर भी आपके ध्यान में थोड़ा अंतराय पैदा कर रहे हैं । आप अनुमति प्रदान करने की कृपा करो ।''

देह के प्रति निर्मम बने महात्मा ने अपनी मूक सहमति प्रदान की ।

मुनिवर के शरीर में से निकले हुए कीड़े व्यर्थ ही मर न जाँय इसलिए वे थोड़ी देर पहले मरी हुई गाय के मृत कलेवर को ले आए ।

उसके बाद जीवानंद आदि छह मित्रों ने मुनिवर के शरीर पर लक्षपाक तैल लगाया । धीरे-धीरे वह तैल मुनिवर के प्रत्येक अंग में फैल गया । उष्ण लक्षपाक तैल के फैलने से थोड़ी देर के लिए वे मुनि मूर्च्छित हो गए ।

लक्षपाक तैल से आकुल-व्याकुल बने वे कृमि मुनिवर के देह में से बाहर निकल आए । उसके बाद जीवानंद वैद्य ने मुनिवर के देह को रत्न कंबल में लपेट लिया । वे सारे कृमि रत्नकंबल पर चोंट गए । उसके बाद धीरे से झाड़कर वे सब कृमि मरी हुई गाय के कलेवर पर छोड़ दिए, ताकि वे भी अपना आयुष्य शांति से पूरा कर सकें । फिर उन्होंने गोशीर्ष चंदन के लेप द्वारा मुनिवर के देह को शांत किया ।

उसके बाद पुनः मुनि के शरीर पर लक्षपाक तैल लगाया गया । इस बार मुनिवर के मांस में व्याप्त बने कृमि बाहर आ गए । उन सभी कृमियों को पुनः रत्नकंबल पर लेकर उन्हें गाय के मृत कलेवर पर छोड़ दिया ।

पुनः तीसरी बार लक्ष पाक तैल लगाया गया । इसके प्रभाव से मुनि की अस्थि आदि में रहे कृमि बाहर आ गए । वापस उन्हें रत्नकंबल पर ले लिया गया और उन्हें मृत गाय के कलेवर पर छोड़ दिया ।

इस प्रकार तीन बार तैल की मालिश के कारण मुनिवर के शरीर में रहे सभी कृमि बाहर आ गए। मुनिवर रोगमुक्त बन गए, पुनः मुनिवर के देह पर गोशीर्ष चंदन का विलेपन किया गया। मुनिवर का देह रोगमुक्त बना। मुनिवर की चिकित्सा द्वारा उन सभी छह मित्रों ने भी विशिष्ट पुण्य उपार्जित किया।

मुनिवर ने उन सभी को धर्मलाभ की आशिष दी...तत्पश्चात् वे मुनि वहाँ से अन्यत्र विहार कर गए।

उसके बाद उन छह मित्रों ने रत्नकंबल व गोशीर्ष चंदन बेच दिया, उससे जो सुवर्ण प्राप्त हुआ, उस सुवर्ण से तथा अपने पास रहे सुवर्ण से उन्होंने देवाधिदेव वीतराग परमात्मा का एक सुंदर जिनालय तैयार कराया। एक शुभ दिन उस मंदिर में परमात्मा की प्रतिष्ठा कराई...उसके बाद वे छह मित्र प्रति दिन परमात्मा की अष्ट प्रकारी पूजा करने लगे। द्रव्य पूजा के बाद वे अत्यंत भावपूर्वक भावपूजा करने लगे।

एक दिन संसार से विरक्त बने उन छह मित्रों ने गुरु भगवंत के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की।

निर्मल संयम धर्म की आराधना के फलस्वरूप वे छह मित्र समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्तकर बारहवें अच्युत देवलोक में देव के रूप में पैदा हुए।

ऋषभदेव प्रभु ने धन्ना सार्थवाह के भव में सम्यक्त्व प्राप्त किया, उसके बाद क्रमशः देवादि भवों को प्राप्त कर बारहवें भव में जंबुद्वीप के पश्चिम विदेह में **पुष्कलावती विजय** में **पुंडरीकिणी नगरी** में **वज्रसेन** राजा की रानी **धारिणी** देवी की कुक्षि में पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। उस समय धारिणी देवी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल पूर्ण होने पर धारिणी देवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम वज्रनाभ रखा गया। क्रमशः धारिणी देवी ने बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ नाम के चार पुत्ररत्नों को जन्म दिया।

यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने पर अनेक राजकन्याओं के साथ वज्रनाभ का पाणिग्रहण हुआ। लोकांतिक देवों ने आकर वज्रसेन राजा को तीर्थप्रवर्तन के लिए विनती की। वज्रसेन राजा ने सांवत्सरिक दान दिया और

उसके बाद दीक्षा ग्रहण की । वज्रनाभ ने छह खंड पर विजय प्राप्त की और वे चक्रवर्ती बने । समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा ।

एक शुभ दिन समस्त घातिकर्मों का क्षय कर **वज्रसेन** भगवंत को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की । वज्रसेन तीर्थंकर परमात्मा ने पैंतीस गुणों से युक्त धर्मदेशना प्रदान की, जिसे सुनकर अन्य अनेक पुण्यात्माओं ने सर्वविरति, देशविरति धर्म स्वीकार किया । चतुर्विध संघ की स्थापना हुई ।

वज्रसेन तीर्थंकर परमात्मा ग्रामानुग्राम विचरण कर अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देने लगे । एक दिन वज्रसेन तीर्थंकर परमात्मा विहार करते हुए पुंडरीकिणी नगरी में पधारे । देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की । अपने पिता वज्रसेन तीर्थंकर परमात्मा के आगमन के समाचार जानकर वज्रनाभ चक्रवर्ती अपने छोटे भाई आदि विशाल परिवार के साथ समवसरण में आए । वज्रसेन तीर्थंकर परमात्मा ने भव्य जीवों के कल्याण के लिए वैराग्य वाहिनी धर्मदेशना प्रदान की । उस देशना को सुनकर वज्रनाभ चक्रवर्ती के हृदय में संसार के प्रति तीव्र वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ । तृण की भाँति छह खंड के आधिपत्य का त्याग कर उन्होंने भागवती दीक्षा स्वीकार की...इसके साथ ही उनके छोटे भाई बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ ने भी संसार के समस्त भौतिक सुखों का त्याग कर प्रव्रज्या स्वीकार की । रत्नत्रयी की निर्मल आराधना में लयलीन बने वज्रनाभ मुनि द्वादशांगी के ज्ञाता बने और उनके लघु बंधु ग्यारह अंगों के ज्ञाता बने ।

जगत् के समस्त जीवों के कल्याण की पवित्र कामना के साथ वज्रनाभ मुनि ने वीश स्थानक तप की आराधना प्रारंभ की । अरिहंत, सिद्ध, प्रवचन, आचार्य, स्थविर, उपाध्याय, साधु, ज्ञान, दर्शन, विनय, चारित्र, ब्रह्मचर्य, समाधि, तप, दान, वैयावृत्य, संयम, अभिनव ज्ञान, श्रुत और तीर्थ पद की आराधना करके वज्रनाभ मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जित किया ।

वैयावच्च का प्रभाव

वज्रनाभ महामुनि के परिवार में 500 साधु महात्मा थे । बाहु और सुबाहु मुनि में वैयावच्च का अपूर्व गुण था । **वैयावच्च अप्रतिपाती गुण है ।** बाहु

मुनि निर्दोष भिक्षा लाकर गच्छ में रहे 500 मुनियों की भक्ति करने लगे और सुबाहु मुनि गच्छ में रहे तपस्वी-वृद्ध ग्लान आदि मुनियों की सेवा-शुश्रूषा करने लगे। इसके फलस्वरूप बाहु मुनि ने **'चक्रवर्ती'** के योग्य कर्म उपार्जित किया और सुबाहु मुनि ने **''अपूर्व बल''** योग्य कर्म उपार्जित किया। अपने परिवार के साथ-साथ बाहु और सुबाहु अपने गुरुदेव की भी अपूर्व भक्ति करने लगे।

ईर्ष्या से स्त्री-वेद का बंध

बाहु व सुबाहु मुनि के वैयावच्च गुण की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। वज्रनाभ गुरुवर भी दोनों मुनियों के सेवा-गुण की पुनः-पुनः प्रशंसा करने लगे। अन्य मुनि तो बाहु व सुबाहु मुनि की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हुए। परन्तु पीठ और महापीठ महामुनि उस प्रशंसा को सहन नहीं कर सके। उनके मन में बाहु, सुबाहु मुनि के प्रति ईर्ष्या भाव पैदा हो गया।

गुणीजनों के गुणों की प्रशंसा सुनकर हर्षित होने के बजाय वे मनोमन सोचने लगे, **''जो लोग दूसरों की सेवा-शुश्रूषा करते हैं, सभी लोग उन्हीं की प्रशंसा करते हैं।''** हम दोनों आगमों के अध्ययन में इतने समय से मग्न् रहे, फिर भी हमारी कोई प्रशंसा नहीं करता है। सचमुच सभी लोगों को स्वार्थ ही प्यारा है। दुनिया में सभी लोग अपना काम करने वाले को ही मानते हैं।

ईर्ष्या एक भयंकर आग है। ईर्ष्यालु व्यक्ति भीतर ही भीतर जलता रहता है। ईर्ष्या की आग व्यक्ति को भीतर से ही खोखला कर देती है। ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरे के उत्कर्ष को कभी सहन नहीं कर पाता है।

इस प्रकार माया-मिथ्यात्व से युक्त ईर्ष्या के पाप के कारण पीठ और महापीठ मुनिवर ने स्त्रीवेद का बंध किया।

चौदह लाख पूर्व वर्ष तक संयम धर्म का पालन कर वज्रनाभ महामुनि बाहु, सुबाहु, पीठ, महापीठ और केशव मुनि अत्यंत समाधि पूर्वक मृत्यु को प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव के रूप में उत्पन्न हुए।

भरत-बाहुबली तथा ब्राह्मी-सुंदरी का जन्म

इस अवसर्पिणी काल का तीसरा आरा लगभग बीत चुका था। तीसरे आरे की समाप्ति में चौरासी लाख पूर्व वर्ष तथा 89 पक्ष बाकी थे, तब आषाढ़ वदी-4 के शुभ दिन सर्वार्थसिद्ध विमान में अपने 33 सागरोपम के दीर्घ आयुष्य

को पूर्ण कर **वज्रनाभ** की आत्मा का नाभि कुलकर की पत्नी **मरुदेवा** की कुक्षि में अवतरण हुआ । उस समय मरुदेवा माता ने ऋषभ, हाथी, सिंह आदि चौदह महास्वप्न देखे ।

गर्भकाल के 9½ मास व्यतीत होने पर चैत्र वदी अष्टमी के शुभ दिन स्वर्ण समान कांतिमान तेजस्वी पुत्र और एक पुत्री को मरुदेवा ने जन्म दिया । 64 इन्द्रों ने मेरुपर्वत पर जन्म महोत्सव मनाया । तत्पश्चात् माता द्वारा स्वप्न में सर्वप्रथम वृषभ देखने के कारण बालक का नामकरण **'ऋषभ'** किया गया और कन्या का नामकरण **सुमंगला** किया गया ।

वंश-स्थापना

लगभग एक वर्ष बीतने पर इन्द्र महाराजा इक्षुदंड लेकर ऋषभकुमार के पास आए । उस समय बाल स्वभाव के कारण इक्षु भक्षण की इच्छा से इक्षुदंड लेने के लिए ऋषभकुमार ने अपना हाथ लंबा किया । प्रभु की इस इच्छा को जानकर इन्द्र ने अत्यंत विनयपूर्वक तत्काल वह इक्षुदंड प्रभु के कर-कमलों में अर्पित कर दिया । इन्द्र ने इक्षु के अनुसार प्रभु के वंश का नाम **'इक्ष्वाकु वंश'** रखा ।

प्रभु का लग्न

उस समय युगलिक काल चल रहा था । देवतागण प्रभु के लिए उत्तर कुरु में से कल्पवृक्ष के ताजे फल व क्षीरसागर का जल लाते थे । ऋषभदेव प्रभु उन फलों का भक्षण कर धीरे-धीरे बड़े होने लगे ।

कुछ वर्ष व्यतीत होने पर एक अनहोनी घटना बनी । एक युगल ताल-वृक्ष के नीचे बैठकर वार्ता-विनोद कर रहा था तभी अचानक ताल फल के गिरने से उस युगल में से पुरुष की मृत्यु हो गई और वह कन्या बच गई । वह कन्या इधर-उधर भटकने लगी । अन्य युगलिकों ने जाकर नाभि कुलकर से बात की ।

यह कन्या **'ऋषभकुमार की पत्नी हो'** इस प्रकार कहकर नाभि कुलकर ने उस कन्या को स्वीकार कर लिया । उस कन्या का नाम **सुनंदा** रखा गया । ऋषभकुमार यौवन वय को प्राप्त हो चुके थे । उस समय प्रभु के लग्न-काल को जानकर इन्द्र महाराजा अपने विशाल परिवार के साथ वहाँ आए ।

इन्द्र ने आकर प्रभु से कहा, ``हे प्रभो ! मैं आपके अभिप्राय को जाने बिना कुछ कहना चाहता हूँ। कृपया आप नाराज न हों। यद्यपि मैं जानता हूँ कि आप गर्भकाल से ही विरक्त हो। संसार के भोग-सुखों की आपको तनिक भी इच्छा नहीं है। आपका मन तो एक मात्र मुक्ति रूपी कन्या को वरने के लिए समुत्सुक है। कामभोगों में आपका मन नहीं है, फिर भी हे स्वामी ! इस अवसर्पिणी काल में मोक्षमार्ग की तरह व्यवहार-मार्ग का प्रवर्तन आप ही से होने वाला है, अतः आप कृपा करके मुझे अनुमति दें, मैं आपके विवाह-महोत्सव के लिए आया हूँ।''

उस समय प्रभु ने अपने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया, **``लग्न-जीवन एवं राज-गद्दी को स्वीकार किए बिना मेरे भोगावली कर्म क्षीण होने वाले नहीं हैं''** इस बात को जान कर प्रभु ने इन्द्र को अपनी मूक सहमति प्रदान कर दी। प्रभु की सहमति मिलते ही इन्द्र महाराजा ने विशाल लग्न-मंडप तैयार कराया और बड़े धूम-धाम के साथ **सुनंदा** व **सुमंगला** के साथ प्रभु का लग्न-महोत्सव संपन्न किया। धीरे-धीरे समय बीतने लगा।

एक शुभ दिन सुमंगला ने चौदह महास्वप्न देखे। उसी रात्रि में सर्वार्थसिद्ध विमान में से बाहु और पीठ की आत्मा का च्यवन हुआ और उनका सुमंगला की कुक्षि में अवतरण हुआ।

गर्भकाल व्यतीत होने पर सुमंगला ने पुत्र-पुत्री के युगल को जन्म दिया। पुत्र का नाम **'भरत'** रखा गया और पुत्री का नाम **'ब्राह्मी'** रखा गया।

इधर सुबाहु और महापीठ की आत्मा का भी सर्वार्थ सिद्ध विमान से च्यवन हुआ और सुनंदा की कुक्षि में उनका अवतरण हुआ। गर्भकाल व्यतीत होने पर सुनंदा ने भी एक युगल को जन्म दिया। बालक का नाम **'बाहुबली'** रखा गया और बालिका का नाम **'सुंदरी'** रखा गया। तत्पश्चात् सुमंगला ने क्रमशः 49 पुत्र-युगलों को जन्म दिया। इस प्रकार ऋषभदेव प्रभु के भरत-बाहुबली आदि 100 पुत्र और ब्राह्मी-सुंदरी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

प्रभु का राज्याभिषेक:

अपने अवधिज्ञान के बल से प्रभु के राज्याभिषेक के प्रसंग को जानकर इन्द्र ने युगलिकों के विनय के अनुरूप 12 योजन लंबी व 9 योजन चौड़ी

विनीता नगरी की स्थापना की । ऋषभदेव प्रभु की उम्र 20 लाख पूर्व वर्ष हो चुकी थी । इन्द्र ने बहुत ही धूमधाम के साथ प्रभु का राज्याभिषेक किया । इस प्रकार इस अवसर्पिणी काल में ऋषभदेव प्रभु सर्वप्रथम राजा बने ।

कला-शिक्षण

धीरे-धीरे कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे । उन पर फल लगने बंद हो गए । गेहूँ, चावल, चना आदि अनाज घास की तरह उगने लगे । लोग उन्हें कच्चा ही खाने लगे । धीरे-धीरे वह अनाज भी अजीर्ण करने लगा । आहार की समस्याएँ बढ़ने लगीं । लोग उपाय ढूंढने लगे परन्तु कोई उपाय हाथ नहीं लगा । इधर अचानक ही अग्नि की उत्पत्ति हुई । लोग उसे रत्न समझ कर पकड़ने लगे, परन्तु आग ने उन पर दया नहीं की और उनके हाथ जला दिये । भयभीत बने वे युगलिक ऋषभदेव राजा के पास आए ।

आग की उत्पत्ति जानकर ऋषभदेव राजा ने सर्वप्रथम मिट्टी के बर्तन बनाने की कला सिखाई । कुम्हार के शिक्षण के बाद प्रभु ने चित्रकला आदि मुख्य पाँच शिल्प और उन सभी के भेद-प्रभेद वाले 100 शिल्प सिखाए ।

तत्पश्चात् ऋषभप्रभु ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को पुरुषों की 72 कलाएँ सिखाईं । बाहुबली को हाथी, घोड़े, स्त्री, पुरुष आदि के लक्षण बतलाए । ब्राह्मी को दाहिने हाथ से अठारह लिपियाँ सिखाईं और सुंदरी को बाएँ हाथ से गणित विद्या सिखाई ।

इस प्रकार प्रभु ने अपने गृहस्थ जीवन में सभी प्रकार का व्यावहारिक शिक्षण प्रदान किया ।

दीक्षा स्वीकार

न्याय और नीति पूर्वक राज्य का संचालन करते हुए ऋषभदेव प्रभु के 83 लाख पूर्व वर्ष व्यतीत हो गए । प्रभु ने अपने ज्ञान के बल से देखा कि मेरे भोगावली कर्म लगभग क्षीण हो चुके हैं । उस समय नौ लौकांतिक देवों ने आकर प्रभु को तीर्थप्रवर्तन करने के लिए विनती की । जन्म से ही विरक्त ऐसे प्रभु ने वार्षिक दान देना प्रारंभ किया । प्रभु प्रतिदिन एक करोड़ 8 लाख सुवर्ण मुद्राओं का दान देने लगे । इस प्रकार करते-करते एक वर्ष पूरा हो गया ।

दीक्षा अंगीकार करने के पूर्व ऋषभदेव प्रभु ने अपने परिवार को इकट्ठा

किया और उसके बाद भरत को कहा, ``मैं चारित्र धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ, यह राज्य तुम स्वीकार करो ।''

भरत ने कहा, ``हे पिताजी ! आपके चरण-कमलों में आलोटने से जो सुख मिलता है, वह सुख सत्ता के सिंहासन पर बैठने से प्राप्त नहीं हो सकता । आपके चरण-कमलों में रहने से जो आनंद आता है, वह छत्र की छाया में प्राप्त नहीं होगा । मुझे आपका वियोग सहना पड़े तो इस साम्राज्य से भी क्या फायदा ? आपकी सेवा के सुख के आगे यह राज्य का सुख एक बूंद समान ही है ।''

स्वामी ने कहा, ``यदि पृथ्वी पर कोई राजा नहीं होगा तो सर्वत्र अराजकता फैल जाएगी । तुम इस पृथ्वी का न्याय-नीति से पालन करो ।''

भरत ने पिता की आज्ञा को स्वीकार किया । प्रभु के आदेश से मंत्रीजनों ने भरत का राज्याभिषेक किया । भरत को अयोध्या का राज्य दिया गया और बाहुबली को बहली देश का राजा बनाया गया । अन्य छोटे बंधुओं को उनकी अपनी-अपनी योग्यतानुसार छोटे-छोटे राज्य दिये गये ।

इस प्रकार 83 लाख पूर्व तक राज्य को भोगकर चैत्र वदी अष्टमी के दिन ऋषभदेव प्रभु **सुदर्शना** नाम की शिविका में आरूढ़ होकर भव्य वरघोड़े के साथ **सिद्धार्थ** नाम के उद्यान में पधारे । ममत्वरहित ऋषभदेव प्रभु ने अशोक वृक्ष के नीचे वस्त्र-अलंकार आदि उतार दिये । प्रभु ने पंचमुष्टि लोच प्रारंभ किया । चार मुष्टि लोच के बाद इन्द्र के आग्रह से मस्तक पर की शिखा ऐसे ही रहने दी । इस प्रकार ऋषभदेव प्रभु का चार मुष्टि लोच हुआ । इन्द्र ने प्रभु के दाहिने स्कंध पर देवदूष्य डाला । प्रभु ने सिद्धों की साक्षी में सर्व सावद्य प्रवृत्तियों का त्याग कर भागवती दीक्षा अंगीकार की । उसी समय उन्हें चौथा मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

उस समय कच्छ, महाकच्छ आदि चार हजार राजाओं ने भी प्रभु के साथ भागवती दीक्षा स्वीकार की ।

भरत की निःस्पृहता

ऋषभदेव प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न होने के साथ ही **'यमक'** नाम के उद्यानपाल ने आकर भरत महाराजा को बधाई देते हुए कहा, ``हे

स्वामिन् ! आज पुरीमताल नगर के शकटानन उद्यान में युगादिदेव ऋषभदेव प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है । इस बात का निवेदन करते हुए मुझे अत्यंत ही हर्ष हो रहा है, आज आपका भाग्य चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है ।''

इस समाचार को सुनकर भरत की खुशी का पार न रहा ।

उसी समय **'शमक'** नाम के सेवक ने आकर कहा, ``हे स्वामिन् ! अपनी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, अतः आप उसकी पूजा के लिए पधारें ।'' एक ओर ऋषभदेव प्रभु के केवलज्ञान के समाचार और दूसरी ओर चक्ररत्न की उत्पत्ति के समाचार ! एक बार तो भरत भी सोच में पड़ गया, ``पहले मैं कहाँ जाऊँ ?''

परन्तु दूसरे ही क्षण उसने मनोमन निर्णय कर लिया कि ऋषभदेव प्रभु तो जगत् के प्राणियों के अभयदाता हैं, उनके पास जाऊँगा तो मेरा भी आत्महित होगा; जबकि चक्ररत्न तो अनेक प्राणियों का संहार करने वाला है...उसकी पूजा से मुझे छह खंड का आधिपत्य मिलेगा, परन्तु उसमें आत्महित कहाँ है ? इस प्रकार विचार कर चक्ररत्न की पूजा की उपेक्षा करके भी उसने ऋषभदेव प्रभु के पास जाने का निर्णय कर लिया ।

आत्मकल्याण की सामग्री और भौतिक सुख-सामग्री एक साथ सामने उपस्थित होने पर विवेकी आत्मा तो आत्मकल्याण की सामग्री को ही प्रधानता देगी । भूतकाल में अपनी आत्मा ने अनंतबार भौतिक सुख-सामग्री प्राप्त की है, परन्तु उनसे अभी तक आत्मा संतुष्ट नहीं हुई है । भौतिक सुख-सामग्रियों का उपभोग तो आत्मा को हमेशा अतृप्त ही बनाने वाला है, जबकि आत्मकल्याण की सामग्रियों की प्राप्ति महान् पुण्योदय के बिना नहीं हो पाती है...अतः उन सामग्रियों की उपेक्षा करना हितकर नहीं है ।

भरत की विवेक दृष्टि कितनी विकसित बनी हुई थी ! उसने चक्ररत्न की पूजा की उपेक्षा करके भी उसने आत्मकल्याणकारी ऋषभदेव प्रभु के पास जाने का संकल्प किया ।

मरुदेवा माता को केवलज्ञान

ऋषभदेव प्रभु को हुए केवलज्ञान के समाचार जानकर तत्काल भरत मरुदेवा माता के पास आया । मरुदेवा की स्थिति अत्यंत दयनीय थी । ऋषभदेव प्रभु के द्वारा दीक्षा अंगीकार करने के बाद वह निरंतर रोती रही । निरंतर रुदन के कारण उसकी आँखों का तेज भी समाप्त हो चुका था । मरुदेवा माता निरंतर यही सोचती रहती, ``मेरा बेटा इस पृथ्वी, प्रजा व लक्ष्मी को तृण की भाँति छोड़कर चला गया, अब वह कैसी स्थिति में जी रहा होगा। वाहनों का त्याग कर वह पैदल चलता है। दिव्य भोजन का उसने त्याग कर दिया...पहले सुवर्ण-रत्नों के सिंहासन पर आसीन होता था किन्तु अब वह जंगलों में घूमता है। हाय ! मेरा बेटा ! कितने कष्ट सहन कर रहा है !'' इस प्रकार ऋषभदेव प्रभु के कष्टों को याद कर मरुदेवा माता निरंतर आँसू बहाती !

भरत ने कहा, ``माताजी ! आप निरंतर अपने पुत्र के कष्टों का वर्णन करती रहती हो...अब आप मेरे साथ चलें और अपने पुत्र की समृद्धि देखें...अब तो वे तीन लोक के स्वामी बन चुके हैं ।'' ऐसा कहकर भरत ने मरुदेवा माता को हाथी पर बिठाया और क्रमशः समवसरण की दिशा में आगे बढ़ने लगे ।

कुछ दूरी पार करने पर जैसे ही दूर से समवसरण दिखाई देने लगा, भरत ने मरुदेवा माता को कहा, ``माताजी ! देखो, देवताओं ने प्रभु के लिए समवसरण की रचना की है। वे प्रभु रत्न के सिंहासन पर आसीन हैं। आकाश में देवतागण दुंदुभि का नाद कर रहे हैं। इन्द्र भी प्रभु की स्तुति-गुणगान करते हुए नहीं थक रहे हैं ।''

भरत की इन बातों को सुनकर मरुदेवा के हर्ष का पार न रहा । आनंद के आँसुओं से नेत्र भर आए । मरुदेवा माता ने अपने नेत्रों से ऋषभदेव प्रभु की अतिशय सहित तीर्थंकरपने की समृद्धि देखी और उसी समय वह शुभ ध्यान की धारा में लीन बन गई । तत्क्षण मरुदेवा माता क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो गई और मात्र अन्तर्मुहूर्त में समस्त घाति कर्मों का क्षय कर केवली बन गई...आयुष्य अत्यंत ही परिमित होने से उसी समय अघाती कर्म भी नष्ट हो गए और मरुदेवा माता अंतकृत केवली हो गई ।

अभी तक ऋषभदेव प्रभु ने चतुर्विध संघ की स्थापना ही नहीं की थी...और उसके पहले ही मरुदेवा माता मोक्ष में चली गई। **इस अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम साधु व तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभु हुए परन्तु सर्वप्रथम 'सिद्ध' बनने का श्रेय तो मरुदेवा माता को ही मिला।**

तत्काल देवताओं ने मरुदेवा माता की देह का सत्कार कर उसे क्षीर सागर में डाल दिया। तभी से लोक में मृतक का पूजा-सत्कार प्रारंभ हुआ।

संघ-स्थापना

एक ओर मरुदेवा माता के निर्वाण से भरत को शोक हुआ तो दूसरी ओर पिता ऋषभदेव प्रभु के दर्शन से भरत के हर्ष का पार न रहा। हाथी पर से नीचे उतर कर भरत ने उत्तर दिशा से समवसरण में प्रवेश किया...प्रभु को तीन प्रदक्षिणा देकर उसने अत्यंत ही भावपूर्वक प्रभु की स्तुति की।

तत्पश्चात् ऋषभदेव प्रभु ने वैराग्यवाहिनी धर्मदेशना प्रारंभ की। इस देशना को सुनकर भरत के पुत्र **ऋषभसेन** आदि अनेक ने दीक्षा अंगीकार की। प्रभु ने **ऋषभसेन (पुंडरीक)** आदि 84 दीक्षितों को गणधर पद पर स्थापित किया। भरत के अन्य 500 पुत्रों व 700 पौत्रों ने भी दीक्षा स्वीकार की। भरत-पुत्र मरीचि ने भी भागवती दीक्षा स्वीकार की। भरत की आज्ञा प्राप्त कर ब्राह्मी ने दीक्षा स्वीकार की और वह प्रथम साध्वी बनी।

प्रभु की देशना सुनकर सुंदरी भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गई थी...परन्तु भरत के द्वारा इन्कार करने से वह दीक्षा न ले सकी। उसने श्राविका-धर्म स्वीकार किया। भरत ने प्रभु के पास श्रावक धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार प्रभु ने चतुर्विध संघ की स्थापना की।

छह खंड विजय

देशना-समाप्ति के बाद प्रभु अन्यत्र विहार कर गए। भरत ने विनीता नगरी में प्रवेश किया...वह सीधा आयुधशाला में गया...वहाँ उसने चक्ररत्न को प्रणाम किया।

तत्पश्चात् एक शुभ दिन छह खंड को जीतने के लिए भरत ने प्रयाण किया। प्रयाण के समय हजार यक्षों से अधिष्ठित चक्ररत्न सेना के आगे-आगे चलने लगा। दंडरत्न को धारण करनेवाला **सुषेण नाम** का सेनापति रत्न

अश्वरत्न पर सवार होकर चक्र की तरह आगे चलने लगा । शांति कर्म के लिए पुरोहितरत्न, हर पड़ाव में उत्तम भोजन के लिए गृहपतिरत्न, सेना के लिए मार्ग में हर प्रकार की व्यवस्था करने वाला वर्द्धकि रत्न, चर्मरत्न, ध्वजरत्न, मणि, काकिणी रत्न और खड्ग रत्न को साथ में लेकर भरत क्रमशः आगे बढ़ने लगा ।

भरत के साथ उसका सैन्य भी चला ।

अपने विशाल सैन्य व शस्त्र के बल से भरत एक के बाद एक देश पर विजय प्राप्त करता ही गया । इस प्रकार 60000 वर्षों में भरत चक्रवर्ती ने छह खंड पर विजय प्राप्त की । उसके बाद उन्होंने अयोध्या की ओर प्रयाण किया । अयोध्याप्रयाण के समय चक्रवर्ती के साथ 14 रत्न, 9 निधि, 64000 देवांगना जैसी स्त्रियाँ, 32000 मुकुटबद्ध राजा, 84 लाख हाथी, 84 लाख घोड़े, 84 लाख रथ, 96 करोड़ पैदल सैन्य था ।

क्रमशः आगे बढ़ता हुआ भरत अयोध्या के निकट पहुँचा । 60,000 वर्षों के बाद भरत का आगमन हो रहा था अतः प्रजाजनों में खुशी का पार नहीं था । भरत चक्रवर्ती के स्वागत के लिए संपूर्ण नगर को विविध द्वारों, तोरण, ध्वजा-पताकाओं आदि से सजा दिया गया ।

शुभ मुहूर्त में बहुत आडंबर के साथ भरत ने नगर में प्रवेश किया । तत्पश्चात् 12 वर्ष तक भरत के राज्याभिषेक का महोत्सव चला ।

सुंदरी की दीक्षा

बारह वर्ष के राज्याभिषेक महोत्सव की समाप्ति के बाद भरत अपने सभी निकट के संबधियों से मिला ।

ब्राह्मी ने जब दीक्षा ली थी, तब सुंदरी भी साथ में ही दीक्षा लेना चाहती थी, परन्तु भरत की अनुमति नहीं मिलने से वह दीक्षा नहीं ले सकी । भरत तो छह खंड को जीतने के लिए चले गए ।

सुंदरी ने सोचा, ``मेरे सुंदर रूप के कारण ही मुझे चारित्र धर्म के लिए अनुमति नहीं मिल पाई है । अहो ! यह सुंदर रूप किस काम का ? इस रूप ने तो मेरे चारित्र में अंतराय उत्पन्न किया है । इस प्रकार विचार कर अपने बाह्य रूप-सौंदर्य को नष्ट करने के लिए और अपने आत्म-सौंदर्य को

और अधिक तेजस्वी बनाने के लिए सुंदरी ने आयंबिल तप प्रारंभ किया। पुष्टिकारक आहार के संपूर्ण त्याग और रूखे-सूखे भोजन के कारण उसकी देह लता धीरे-धीरे कृश होने लगी...और देह का सौंदर्य भी नष्ट होने लगा। 60000 वर्षों में तो सुंदरी एक दम सूखी लकड़ी सी हो गई।

भरत ने सुंदरी को देखा तो वह उसे पहचान नहीं पाया। जब राजसेवकों ने सुंदरी का परिचय दिया, तभी भरत को पता चला कि सुंदरी की यह हालत हो गई है।

सुंदरी की इस दयनीय स्थिति को देख भरत को अत्यंत ही आघात लगा।

भरत ने अधिकारी पुरुषों को ठपका देते हुए कहा, ``अरे ! क्या अपने महलों में अनाज का दुष्काल पड़ गया है ? क्या पौष्टिक पदार्थ समाप्त हो गए हैं ? क्या बगीचों में वृक्षों पर फल उगने बंद हो गए हैं ? अथवा सुंदरी के शरीर में कोई रोग पैदा हो गया है ? यदि रोग हो गया हो तो उसका इलाज करने वाले वैद्य विद्यमान नहीं हैं क्या ?''

भरत महाराजा के ठपके भरे इन शब्दों को सुनकर अधिकारी वर्ग ने कहा, ``स्वामिन् ! आपके पुण्य प्रभाव से आपके भवन में किसी भी वस्तु की कमी नही है, परन्तु...।''

``परन्तु क्या ?''

``जब से आपने दिग्विजय के लिए प्रयाण किया, तब से इस सुंदरी ने सभी प्रकार के सरस आहार का त्याग कर दिया...यह तो एक मात्र प्राणों को धारण करने के लिए रूखा-सूखा अन्न खाती है अर्थात् यह आयंबिल करती है। जब से आपने इसे दीक्षा लेने के लिए इन्कार किया है, तब से यह अनासक्त भाव से जीवन व्यतीत कर रही है।''

अधिकारी वर्ग के इन शब्दों को सुनकर भरत ने कहा, ``बहिन ! क्या तुम दीक्षा लेना चाहती हो ?''

सुंदरी ने कहा, ``हाँ।''

सुंदरी की इस भावना को जानकर भरत ने कहा, ``अहो ! मुझे धिक्कार हो, मैंने प्रमादवश इस सुंदरी के चारित्र में अंतराय किया।''

बस, उसी समय भरत ने सुंदरी को भागवती प्रव्रज्या स्वीकार करने के लिए अपनी अनुमति दे दी। अनुमति प्राप्त कर सुंदरी एकदम खुश हो गई।

...और एक शुभ दिन संसार के मोह के बंधनों को तोड़कर सुंदरी ने आदिनाथ प्रभु के चरणों में भागवती-दीक्षा स्वीकार कर ली। दीक्षा अंगीकार करने के बाद वह रत्नत्रयी की आराधना, साधना में एकदम डूब गई।

भाइयों द्वारा दीक्षा स्वीकार

एक बार भरत की आज्ञा से दूत ने जाकर 98 पुत्रों को कहा, ``यदि आप राज्य चाहते हो तो भरत महाराजा की सेवा में उपस्थित हों।''

दूत की यह बात सुनकर 98 पुत्रों ने सोचा, ``पिता ने भरत व हम सभी को बाँटकर राज्य दिया है। अब उसे हमारा राज्य छीनने का क्या अधिकार है ? उसकी सेवा करने से हमें और अधिक तो क्या मिल सकता है ? क्या वह हमें मौत, वृद्धावस्था व आने वाले रोगों से बचा सकता है ? यदि नहीं तो उसकी सेवा से क्या फायदा है ? उसके पास विशाल राज्य है, फिर भी आश्चर्य है कि उसे इससे संतोष नहीं है। यदि वह बलात्कार से राज्य लेना चाहेगा तो हम भी कुछ कम नहीं हैं, हम भी तो उसी पिता के पुत्र हैं।'' इस प्रकार विचार कर उन्होंने आए हुए दूत को कहा, ``हम इस बात का समाधान ऋषभदेव प्रभु के पास करेंगे।'' इतना कहकर उन्होंने दूत को विदाई दे दी।

वे 98 पुत्र ऋषभदेव प्रभु के पास गए। प्रभु को नमस्कार वंदन कर उन्होंने भावपूर्वक प्रभु की स्तुति की।

उसके बाद उन्होंने कहा, ``हे प्रभो ! आपने हमको व भरत को अपनी-अपनी योग्यतानुसार राज्य बाँटकर दिया है। हम अपने राज्य से संतुष्ट हैं...परन्तु भरत हमारा राज्य छीनना चाहता है।''

``हे प्रभो ! अपने को बड़ा मानने वाले भरत के वचन मात्र से हम कायर की तरह पिता के द्वारा दिए हुए राज्य का त्याग क्यों करें ? हम न तो राज्य छोड़ना चाहते हैं और न ही भरत की सेवा करना, अतः आप ही कहें, हमें क्या करना चाहिए ?''

अपने 98 पुत्रों के इस निवेदन को सुनकर प्रभु ने अपने ज्ञानबल से

देखा, ``ये सभी भद्रिक परिणामी हैं, सरल हैं, इनको यदि आत्मा के शाश्वत साम्राज्य की जानकारी दी जाएगी तो इनका इस राज्य का मोह तुरंत दूर हो जाएगा।''

अपने 98 पुत्रों को प्रतिबोध देते हुए प्रभु ने कहा, ``हे भव्यो ! अत्यंत द्रोह करने वाले शत्रुओं के साथ वीर पुरुषों को युद्ध करना ही चाहिए।'' परन्तु क्या तुम अपने वास्तविक शत्रुओं को पहिचानते हो ?

``राग-द्वेष, मोह, अज्ञान और कषाय ये ही आत्मा के भयंकर शत्रु हैं। यदि इन शत्रुओं को परास्त कर लिया तो इस जगत् में अपना कोई शत्रु नहीं रहेगा। बाह्य शत्रुओं की उत्पत्ति का आधार अंतरंग शत्रु ही हैं। जब तक अंतरंग शत्रु जीवित होंगे, तभी तक बाह्य शत्रु विद्यमान रहेंगे, जिसके अंतरंग शत्रु समाप्त हो गए, उसका इस दुनिया में कोई शत्रु नहीं रहेगा।

``हे पुण्यात्माओ ! पहले स्वर्ग के सुखों से भी जो आत्मा तृप्त नहीं हुई है वह आत्मा मानव जीवन के क्षणिक-सुखों से कैसे तृप्त हो सकेगी ?''

इस बात को समझाने के लिए ऋषभदेव प्रभु ने एक दृष्टांत देते हुए कहा—

``एक बार कोयला बनाने वाला मनुष्य जंगल में गया। चारों ओर से एक जगह लकड़ियाँ इकट्ठी कर उसने उसमें आग लगाई। दोपहर की भयंकर गर्मी से उसे सख्त प्यास लगी। उसके पास मशक में जो पानी था, वह सारा पानी पी गया, फिर भी उसकी प्यास नहीं बुझी। वह पानी की शोध में चल पड़ा। परन्तु कहीं भी उसे पानी नजर नहीं आया। शारीरिक थकावट के कारण वह एक वृक्ष के नीचे बैठा। वृक्ष की शीतल छाया में ठंडी हवा के कारण उसे नींद आ गई। नींद में उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में ही वह अपने घर पहुँच गया। अत्यंत प्यास के कारण घर में रहे सभी मटकों के पानी को वह पी गया, फिर भी उसकी प्यास नहीं बुझी। आगे चलने पर एक गहरा कुआ आया, जिसके पैंदे में थोड़ा सा जल था। कुए में से पानी निकालने के लिए अन्य साधन तो था नहीं, अतः घास के पूले को डोरी से बाँध कर उसे कुए में उतारा और फिर उसे बाहर खींचने लगा। ऊपर आने तक काफी जल तो उस पूले में से नीचे टपक गया। उस पूले को बाहर निकालने के बाद वह पुरुष घास के तिनकों पर रही जल की बूंदों को चाटने लगा।''

``नदी, तालाब व सागर के मीठे जल के पान से जो तृषा शांत नहीं

हुई, क्या वह प्यास अल्प जलबूंदों से बुझ सकेगी ?

``बस, इसी प्रकार भूतकाल में स्वर्ग के सुखों से भी जो आत्मा तृप्त नहीं हुई, क्या वह आत्मा मानवीय सुखों से तृप्त हो सकती है ?

``हे पुत्रो ! **यदि तुम तृप्ति चाहते हो तो आत्मा के शाश्वत साम्राज्य को प्राप्त करो । उस साम्राज्य की प्राप्ति के बाद दुनिया की कोई ताकत उस साम्राज्य को लूट नहीं सकेगी । आत्मा के साम्राज्य को पाने के लिए रत्नत्रयी की आराधना-साधना के सिवाय अन्य कोई विकल्प नहीं है ।''**

ऋषभदेव प्रभु की संवेग और वैराग्य वर्धक इस धर्मदेशना को सुनकर 98 पुत्रों के दिल में तत्क्षण इस असार-संसार के प्रति तीव्र वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया और उसी समय प्रभु के पास उन्होंने भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली । वे सभी अगारी मिटकर अणगार बन गए ।

ऋषभदेव प्रभु की धर्मदेशना का यह कैसा पुण्य-प्रभाव !

राज्य की लिप्सा से आए पुत्रों ने राज्य को तिलांजलि देकर संयम के वस्त्र धारण कर लिये ।

``प्रभु के 98 पुत्रों की कितनी सरलता !!!''

प्रभु के वचनों को सुनकर तत्क्षण त्याग धर्म के साधक बन गए ।

भरत-बाहुबली का युद्ध

भरत महाराजा अपने राजसिंहासन पर विराजमान थे । चारों ओर वातावरण में प्रसन्नता छाई हुई थी । तभी सुषेण सेनापति ने आकर समाचार दिए, ``हे महाराजा ! रूठे हुए बालक की भाँति चक्ररत्न, नगर में प्रवेश नहीं कर रहा है ।''

भरत चक्रवर्ती ने पूछा, ``क्या कारण है ? क्या छह खंड में अभी भी मेरा कोई शत्रु बच गया है, जो मेरी आज्ञा को शिरोधार्य करने से इन्कार कर रहा हो ?''

सुषेण ने कहा, ``भरत क्षेत्र के छह खंडों को जीतकर आपने समस्त दुश्मनों को पराजित कर सर्वत्र विजयश्री हासिल की है...परन्तु अभी-अभी मुझे पता चला है कि आपके छोटे भाई बाहुबली जी ने अभी तक आपकी आज्ञा शिरोधार्य नहीं की है । आपके अन्य 98 छोटे भाइयों ने तो राज्य का त्याग कर

चारित्र धर्म स्वीकार कर लिया है, अतः अब उनके साथ युद्ध का तो प्रश्न ही खड़ा नहीं होता...परन्तु बाहुबली बहली देश के राजा हैं, अतः जब तक आप उन पर विजय प्राप्त नहीं करोगे, तब तक आप छह खंड के पूर्ण विजेता नहीं कहला सकते ।''

भरत ने कहा, ``अहो ! एक ओर छोटा भाई आज्ञा नहीं मानता यह शर्म की बात है तो दूसरी ओर छोटे भाई से युद्ध करना भी दुःखदायी ही है ।''

सुषेण ने कहा, ``मुझे विश्वास है कि बाहुबली जी आपके इस धर्म संकट को दूर कर देंगे । व्यवहार में भी देखा जाता है कि बड़ा भाई जो आज्ञा करे, उसका पालन छोटा भाई करता है । इस हेतु एक दूत को तैयार कर बाहुबली जी के पास भेजना चाहिए ।''

महाराजा भरत ने मंत्री की बात स्वीकार कर ली और सुवेग नाम के दूत को तैयार कर उसे तक्षशिला की ओर रवाना कर दिया ।

विनीता नगरी को छोड़ वह दूत ज्यों-ज्यों तक्षशिला नगरी की ओर आगे बढ़ा, त्यों-त्यों अशुभ शकुन होने लगे ! उसका बायाँ नेत्र स्फुरित होने लगा, उसका रथ मार्ग में बार-बार स्खलित होने लगा...बीच मार्ग में से काला सर्प निकला और वायु भी प्रतिकूल बहने लगा । दाहिनी ओर गधा रेंकने लगा । इस प्रकार के अपशकुन होने पर भी स्वामी की आज्ञा होने से वह दूत क्रमशः आगे बढ़ता ही चला ।

जैसे ही वह दूत तक्षशिला नगरी के निकट पहुँचा...उसने दूर से नगर की समृद्धि देखी । वहाँ के लोगों का परस्पर वार्तालाप सुना । नगर के बाहर उद्यानों में बँधे हुए हाथियों को देख उसे लगा कि सभी द्वीपों के चक्रवर्तियों के हस्ती-रत्न यहाँ लाकर रख दिये हैं । अश्वशालाओं में बँधे घोड़ों को देख उसे लगा मानों सभी अश्वरत्न यहाँ इकट्ठे कर दिए हैं । नगर में प्रवेश करने के बाद सुवेग दूत ने कहीं पर भी भरत का नाम नहीं सुना । यहाँ के लोक-हृदय में बाहुबली जी की पूर्ण प्रतिष्ठा थी ।

सुवेग दूत राजमहल के द्वार पर आया । राजा की ओर से अनुमति मिलने पर दूत ने राजमहल में प्रवेश किया । राजमहल में प्रवेश करने के बाद दूत ने अत्यंत ही तेजस्वी और पराक्रमी बाहुबली जी को राजसिंहासन पर बैठे हुए देखा ।

सुवेग ने महाराजा के चरणों में प्रणाम किया । तत्पश्चात् महाराजा के इशारे से प्रतिहारी द्वारा दिया आसन ग्रहण किया ।

बाहुबली जी बोले, ``हे सुवेग ! आर्य भरत सकुशल हैं न ! 60,000 वर्षों तक युद्ध कर छह खंड को जीतकर भरत व उसका सैन्य कुशलपूर्वक लौटा है न ?''

बाहुबलीजी के इन शब्दों को सुनकर दूत ने कहा, ``सारी पृथ्वी को सकुशल बनाने वाले भरत राजा भी सकुशल हैं । छह खंड के विजेता ऐसे भरत की आज्ञा का उल्लंघन करने में कौन समर्थ है ? सभी राजा उनकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं, फिर भी उनके मन में चैन नहीं है । सर्वत्र शासन चलता हो परन्तु घर के कुटुम्बीजन ही आज्ञाधीन न हों तो उसका शासन भी उपहास का पात्र माना जाता है । भरत के राज्याभिषेक के प्रसंग पर सभी राजा आदि आए...परन्तु वहाँ एक भी भाई नहीं आया । छोटे भाइयों को नहीं देखकर महाराजा को बड़ा खेद हुआ । 12 वर्ष के राज्याभिषेक महोत्सव की समाप्ति के बाद भी जब कोई भाई नहीं आया, तब उन्होंने सभी के पास दूत भेजे । आपको ज्ञात ही होगा कि 98 भाई, भरत के पास आने के बजाय ऋषभदेव प्रभु के पास चले गए...और प्रभु की देशना सुनकर उन्होंने दीक्षा अंगीकार कर ली । अतः अब आप एक ही बचे हैं । आपके दिल में बंधु के प्रति प्रेम हो तो आप वहाँ चलें और महाराज के हृदय को प्रसन्न करें । अभी तक आप वहाँ नहीं आए, इससे मैं कल्पना करता हूँ कि आप बड़े भाई की अवज्ञा कर रहे हैं ।

आपका यह अविनय दूसरों को भी अवज्ञा के लिए प्रेरित करता है, अतः उचित तो यही है कि आप वहाँ पधार कर उनकी आज्ञा स्वीकार करें । वे तेज और वय दोनों में आपसे बड़े हैं, अतः राज्य और जीवन की इच्छा हो तो आप उनकी अवश्य सेवा करें ।''

दूत के कड़वे-मीठे वचनों को सुनकर धीर गंभीर वाणी में बाहुबली जी बोले, ``हे दूत ! तुम खूब वाचाल लगते हो । बड़े भाई भरत मुझ से मिलना चाहते हैं, यह बात ठीक है, परन्तु मैं वहाँ इसलिए नहीं आया कि सुर-असुर व इन्द्रों की समृद्धि से ऋद्धिमान बने वे हम अल्प वैभव वालों से लज्जित होंगे ।

``यदि उनमें भ्रातृ-स्नेह होता तो वे अपने छोटे भाइयों को राज्य छोड़

देने की सलाह क्यों देते ? सचमुच, उनमें राज्य का लोभ है। मेरे छोटे भाई तो पिता के पदचिह्नों पर राज्य छोड़कर चले गए हैं...और उनका राज्य भरत ने ले लिया है। क्या वह मेरा भी राज्य लेना चाहता है ? ध्यान रखना, मै वज्र से भी कठोर हूँ। मैं थोड़े वैभव वाला हूँ, फिर भी संतुष्ट हूँ। परन्तु विशाल राज्य मिलने पर भी उसे संतोष नहीं है।

``हमने भरत से न कोई देश लिया है न कोई चीज ली है, फिर वे हमारे स्वामी कैसे हो गए ? उनके व हमारे स्वामी तो ऋषभदेव हैं फिर हम दोनों में स्वामी सेवक का संबंध कहाँ से पैदा हो गया ? मैं तेज का कारण हूँ, मेरे आने से उनका तेज कैसे रह पाएगा ? सूर्य के तेज में सभी तेज विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार मेरे तेज में भरत का तेज भी विलीन हो जाएगा।

``बचपन में मिट्टी के ढेले की तरह मैंने भरत को अपने हाथों से आकाश में उछाल दिया था...और वापस नीचे गिरकर मर न जाय, इसलिए मैंने वापस उन्हें झेल लिया था। मगर अब वे इन बातों को भूल गए लगते हैं।

``हे दूत ! तुम यहाँ से चले जाओ। मैं तो पिता के राज्य से संतुष्ट हूँ...राज्य व जीवन की इच्छा से वे भले यहाँ आएँ...मुझे वहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

महाराजा बाहुबली के इन वचनों को सुनकर आसपास बैठे सभी राजकुमार आदि भी कोपातुर नेत्रों से दूत को देखने लगे।

उसी समय छड़ीदार ने हाथ पकड़कर दूत को आसन पर से उठा दिया। क्षुब्ध बना हुआ वह दूत सभा में से बाहर निकल गया। सुवेग दूत ने जाकर ये सब बातें महाराजा भरत को सुना दीं।

सुषेण महामंत्री ने जब ये बातें सुनीं तो उसने अपना अभिप्राय देते हुए कहा, ``अब युद्ध के सिवाय दूसरा कोई विकल्प नहीं है, अतः शीघ्र ही युद्धप्रयाण की तैयारी प्रारंभ की जानी चाहिए।''

भरत ने महामंत्री की सलाह स्वीकार कर ली और तत्काल युद्ध प्रयाण की भेरी बजा दी गई। सारे सैन्य को तैयार होने के लिए आदेश दे दिया गया। और एक शुभ दिन भरत ने अपने विशाल सैन्य के साथ तक्षशिला की ओर प्रयाण प्रारंभ कर दिया।

जासूसों के द्वारा जैसे ही बाहुबली को सैन्य सहित भरत के आगमन के समाचार मिले बाहुबली ने भी अपने सैन्य को सुसज्ज होने के लिए आदेश कर दिया। बाहुबली ने अपने जयेष्ठ पुत्र सिंहरथ को सेनापति बनाया। इधर भरत ने सुषेण को सेनापति बनाया।

``दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। वह युद्ध 12 वर्ष तक चला, परन्तु दोनों पक्ष बलवान ही रहे, न कोई हारा, न कोई जीता।

``इस जन-हानि व धन हानि को देखकर किसी भी उपाय से इस युद्ध का अंत लाना चाहिए।'' इस प्रकार सोचकर देवताओं ने आकर भरत को समझाते हुए कहा, ``आपको ऐसा युद्ध नहीं करना चाहिए, जिससे निरर्थक ही नरसंहार हो।''

भरत ने कहा, ``लड़ाई की मेरी चाह नहीं है...परन्तु बारह वर्ष तक राज्याभिषेक का महोत्सव चला फिर भी बाहुबली आया नहीं। मैंने उसको बुलाने के लिए दूत भेजा, फिर भी वह आया नहीं। जब तक एक भी राजा चक्रवर्ती की अधीनता स्वीकार न करे, तब तक चक्र नगर में नहीं घुस पाता, मैं तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा हूँ। लड़ने का अन्य कोई कारण नहीं है।''

देवों ने कहा, ``हम बाहुबली के पास जाकर उसे समझाने की कोशिश करेंगे, शायद वे भी आप ही की तरह युद्ध का कोई कारण बताएंगे तो भी आपको ऐसा अधर्म युद्ध तो नहीं करना चाहिए। बड़े पुरुषों को तो दृष्टि, वाक्, बाहु और दंड युद्ध करके हार-जीत का निर्णय कर लेना चाहिए।''

भरत ने देवों की यह बात स्वीकार कर ली।

फिर वे देवता बाहुबली के पास आये और बोले, ``हे ऋषभनंदन ! आप तो जगत् के नेत्र रूपी चकोर को आनंद देने वाले चन्द्र समान हो। समुद्र की तरह आप कभी भी अपनी मर्यादा नहीं तोड़ते हो। आप ऋषभस्वामी के पुत्र हो, अतः लोगों का नाश हो, ऐसा युद्ध आपको उचित नहीं है।''

देवों की बात सुनकर बाहुबली ने कहा, ``आप मेरे पिता के भक्त हो और हम उनके पुत्र हैं, अतः आपका और हमारा संबंध है इसलिए आप ऐसी बात करते हो। दीक्षा के पूर्व पिताजी ने मुझे जो राज्य दिया उसी से मैं संतुष्ट

हूँ...परन्तु यह भरत छह खंड के साम्राज्य से भी संतुष्ट नहीं है । पिता के द्वारा दिये हुए राज्य को छीनकर उसने अपनी गुरुता ही खो दी है । जिस भरत को छह खंड जीतने में 60,000 वर्ष लगे, परन्तु मैं लेना चाहूँ तो तत्काल ही ले सकता हूँ । अतः यदि उसके हितैषी हो तो आप उसे युद्ध से रोकिये ।''

बाहुबली की यह बात सुनकर देवता भी आश्चर्य में पड़ गए । आखिर उन्होंने कहा, ``आपको अधम युद्ध नहीं करना चाहिए, युद्ध करना ही हो तो उत्तम युद्ध करो ।'' बाहुबली ने देवताओं की यह बात स्वीकार कर ली ।

बस, दोनों सेनाओं को युद्ध-विराम का आदेश दे दिया गया ।

भरत की हार

शस्त्र-युद्ध के विराम के बाद सर्वप्रथम भरत और बाहुबली के बीच दृष्टि युद्ध प्रारंभ हुआ । सौधर्म और ईशानेन्द्र की भाँति वे एक-दूसरे को अनिमेष दृष्टि से देखने लगे...परन्तु थोड़ी ही देर में भरत की आँखें बंद हो गईं और उसे हार खानी पड़ी ।

तत्पश्चात् दोनों भाइयों के बीच वाक् युद्ध प्रारंभ हुआ । उस वाक् युद्ध में भी भरत हार गया ।

उसके बाद उन दोनों के बीच दंड युद्ध हुआ...उस युद्ध में भी भरत बुरी तरह से हार गया ।

उसके बाद उन दोनों के बीच बाहु युद्ध हुआ और उस युद्ध में भी भरत हार खा गया ।

इन सब युद्धों में हुई अपनी हार को जानकर भरत एकदम घबरा गया । वह सोचने लगा, **``गाय घास खाकर दूध बनाती है और वह दूध ग्वाला ही ले जाता है ।** बस, इसी प्रकार छह खंड को जीतने की मेहनत मैंने की और वह मुझे मार कर मेरे पास से सारा राज्य छीन लेगा । क्या भरत क्षेत्र का मालिक अब बाहुबली हो जाएगा ? एक म्यान में दो तलवार की भाँति क्या एक क्षेत्र में दो चक्रवर्ती हो सकते हैं ?

क्या अब मुझे परास्त कर बाहुबली चक्रवर्ती बन जाएगा ?

भरत इस प्रकार सोच ही रहा था कि यक्षराज ने चक्र लाकर भरत के

हाथों में थमा दिया । भरत को विश्वास हो गया कि चक्रवर्ती तो मैं ही हूँ । उस समय उसने चक्र को घुमाया और उसे बाहुबली की ओर फेंक दिया । **चक्रवर्ती का चक्र समान गोत्र वालों को घायल नहीं करता है ।** इस नियम के अनुसार वह चक्र वापस भरत के हाथों में आ गया ।

बाहुबली ने सोचा, ``अहो ! इस भरत ने राज्य के लोभ से युद्ध-नीति का भी उल्लंघन कर दिया है । इस प्रकार अन्याय करनेवाले भरत तथा इसके चक्र को मुष्टिप्रहार कर कुचल दूँ ।''

इस प्रकार विचार कर बाहुबली ने भरत को खत्म करने के लिए अपनी मुट्ठी उठाई और वे दौड़ते हुए भरत के पास पहुँचे...परन्तु यह क्या ? मुट्ठी उठाने के साथ ही बाहुबली के दिमाग में एक अलग ही विचार बिजली की भाँति कौंध उठा, और वे सोचने लगे, ``अहो ! इस चक्रवर्ती की तरह मैं भी राज्य का लोभी होकर बड़े भाई का वध करने के लिए तैयार हुआ हूँ, अतः मुझे धिक्कार हो ।'' मेरे पिता ने राज्यलक्ष्मी का सर्वथा त्याग किया है और मैं उसी राज्य के लिए भाई की हत्या करने को तैयार हो गया ।

इस प्रकार विचार कर भरत को मारने के लिए ऊपर उठाई मुट्ठी से बाहुबली ने तत्काल अपने सिर का लोच कर लिया और भरत को कहा, ``बंधुवर्य ! आप मुझे क्षमा करें...मैं अपने पिता के मार्ग पर चलना चाहता हूँ ।''

उस समय देवताओं ने बाहुबली के इस पराक्रम को देख पुष्पवृष्टि की ।

बाहुबली ने मन से ही महाव्रतों को स्वीकार कर लिया । उन्होंने सोचा, ``यदि अभी मैं पिता के पास जाऊँगा तो वय में छोटे और व्रत में बड़े, ऐसे छोटे भाइयों से लघु माना जाऊँगा, अतः यहीं पर खड़ा रहकर ध्यानरूपी अग्नि द्वारा कर्मों को जलाने के बाद जब मुझे केवलज्ञान प्राप्त होगा, तभी मैं स्वामी की पर्षदा में जाऊँगा ।'' इस प्रकार विचार कर बाहुबली ने कायोत्सर्ग की साधना प्रारंभ कर दी । वे निश्चल होकर ध्यानमग्न बन गए ।

भरत का पश्चाताप

बाहुबली के द्वारा दीक्षा अंगीकार करने के साथ ही भरत को अपने कृत्यों का तीव्र पश्चाताप होने लगा । उसने अत्यंत ही भावपूर्वक बाहुबली के चरणों में प्रणाम किया ।

त्याग-धर्म की यह कैसी महानता है ! जो भरत बाहुबली को झुकाना चाहता था, बाहुबली को झुकाने के लिए हर प्रकार का उपाय शोध रहा था, वो ही भरत अब बाहुबली के चरण छूने लगा । उसकी आँखों में पश्चाताप के आँसू आ गए । वह अपने आपको धिक्कारने लगा और बाहुबली के इस महा-पराक्रम की भूरि-भूरि अनुमोदना व प्रशंसा करते हुए बोला, ``हे बंधुवर्य ! आपको धन्य है, आपने इस विशाल राज्य का भी तृण की भाँति त्याग कर दिया और मैं कितना असंतोषी हूँ ? मैंने राज्यप्राप्ति के लोभ से आपको कितना सताया ? वास्तव में आप पिता के सच्चे पुत्र हो...आपने पिता के मार्ग का अनुसरण किया ।'' इस प्रकार अत्यंत ही भावपूर्वक भरत ने बाहुबली मुनि की स्तुति की । उसके बाद बाहुबली के पुत्र **चन्द्रयश** को राजगद्दी पर बिठाकर भरत अपने नगर में आ गया ।

अनासक्त योगी भरत

एक बार ऋषभदेव प्रभु पृथ्वी तल को पावन कर भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए अष्टापद महातीर्थ पर पधारे । शैलरक्षक पुरुष ने प्रभु के आगमन के समाचार भरत महाराजा को दिये । प्रभु के आगमन के समाचार सुनकर भरत महाराजा इतने प्रसन्न हो गए कि तत्काल उन्होंने प्रभु के आगमन की बधाई देने वाले पुरुष को 12.1/2 करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ प्रदान कीं ।

तत्पश्चात् प्रभु के दर्शन की उत्कंठा से भरत अपने विशाल परिवार के साथ अष्टापद की ओर चल पड़े । क्रमशः आगे बढ़ता हुआ भरत अष्टापद पर्वत पर पहुँचा । प्रभु के दर्शन कर वह भाव-विभोर हो गया । उसने समवसरण में प्रवेश किया ।

सर्वप्रथम इन्द्र महाराजा ने प्रभु की स्तुति की । उसके बाद भरत महाराजा ने प्रभु की स्तवना की । तत्पश्चात् ऋषभदेव प्रभु ने वैराग्य रस से भरपूर धर्मदेशना दी ।

देशना-समाप्ति के बाद अपने 98 भाइयों को साधु वेष में देखकर भरत महाराजा सोचने लगे, ``अहो ! मैंने यह क्या किया ? मैं कितना लोभी हूँ...मैंने अपने भाइयों का राज्य भी ले लिया । अरे ! **कौए भी दूसरे कौओं को बुलाकर अन्न आदि का भक्षण करते हैं, जबकि मैं तो अकेला ही राज्य भोग**

रहा हूँ ।'' इस प्रकार विचार कर भरत प्रभु के चरणों में बैठकर अपने छोटे-भाइयों को राज्यग्रहण करने के लिए आग्रह करने लगा ।

भरत की यह बात सुनकर प्रभु ने कहा, ``भरत ! ये तेरे बंधु महा सत्त्वशाली हैं, इन्होंने महाव्रतों की प्रतिज्ञा स्वीकार की है...इन्होंने राज्य व संसार के भोग-सुखों का सर्वथा त्याग कर दिया है । संसार की असारता को समझने वाले ये वमन किए भोगों को स्वीकार नहीं करेंगे ।''

प्रभु का कथन सुनकर चक्रवर्ती भरत ने सोचा, ``ये मेरे त्यागी बंधु राज्य नही लेंगे तो कम-से-कम शरीर को टिकाने के लिए आहार तो लेंगे न !'' इस प्रकार विचार कर भरत ने 500 बैल गाड़ियाँ भरकर आहार की सामग्री मंगवाई और उसने अपने बंधुओं को आहार लेने के लिए आमंत्रण दिया ।

प्रभु ने कहा, ``भरत ! **मुनियों के लिए बनाया हुआ आहार आधाकर्मी होने से उनके लिए अकल्प्य है ।''**

इस प्रकार प्रभु द्वारा निषेध करने पर वह निर्दोष भोजन-सामग्री के लिए बंधुओं को आमंत्रण देने लगा ।

तब प्रभु ने कहा, ``भरत ! **यह राजपिंड होने से मुनियों के लिए अग्राह्य है ।''**

इस बात से भरत को अत्यंत ही आघात लगा । भरत को दुःखी देखकर उसके चित्त की प्रसन्नता के लिए इन्द्र ने प्रभु को पूछा, ``हे स्वामी ! अवग्रह कितने प्रकार के हैं ?''

प्रभु ने कहा, **``अवग्रह पाँच प्रकार के होते हैं । इन्द्र संबंधी, चक्री संबंधी, राजा संबंधी, गृहस्थ संबंधी और साधु संबंधी । ये अवग्रह उत्तरोत्तर पूर्व-पूर्व के बाधक होते हैं ।**

इन्द्र ने कहा, ``प्रभो ! मेरे अवग्रह में जो मुनि विहार करते हैं, उनको मेरे अवग्रह की आज्ञा है ।'' उसकी यह बात सुनकर भरत ने कहा, ``प्रभो ! सभी मुनियों को मेरे अवग्रह क्षेत्र में विचरण करने की अनुमति है ।''

उसके बाद भरत ने इन्द्र को पूछा, ``लाये हुए अन्न आदि का श्रेष्ठ उपयोग क्या हो सकता है ?'' इन्द्र ने कहा, ``यह सब विशेष गुण वाले पुरुषों को दे दो ।'' भरत ने सोचा, ``साधुओं को छोड़ अन्य गुणवान पुरुष

और कौन हैं ?'' फिर ख्याल आया वैराग्यवान श्रावक भी ऐसे ही गुणवान होते हैं, अतः उन्हीं को देना योग्य है ।''

तत्पश्चात् चक्रवर्ती अपनी नगरी में आया । उसने श्रावकों को बुलाकर कहा, ``आप कृषि आदि काम छोड़कर आराधना में तत्पर रहें...आप सदैव मेरे घर पर ही भोजन करें और हमेशा मुझे सावधान करते हुए कहें,

``जितो भवान् वर्द्धते भीस्तस्मान् मा हन मा हन ।''

``आप हारे हुए हैं, भय बढ़ता है, अतः मत मारो, मत मारो ।''

भरत की यह बात सुनकर अनेक श्रावक, चक्री के घर आने लगे और उपर्युक्त वचन बोलने लगे । भरत उन वचनों को सुनकर विचार करता । ``अरे ! मैं किससे हारा हूँ ? किसका भय बढ़ रहा है ? अहो ! अब ख्याल आ गया मैं कषायों से हारा हुआ हूँ...और कषायों का ही भय बढ़ रहा है ।''

इस प्रकार भरत साधर्मिकों की भक्ति के साथ-साथ अपनी आत्म-जागृति बनाए रखते ।

छह खंड के अधिपति भरत महाराजा की यह कैसी आत्मजागृति !!

अष्टापद तीर्थ निर्माण

एक हजार वर्ष न्यून एक लाख पूर्व वर्ष तक पृथ्वीतल पर विचरण कर श्री ऋषभदेव प्रभु ने हजारों-लाखों आत्माओं को प्रतिबोध देकर उन्हें सन्मार्गगामी-मोक्षमार्गगामी बनाया । प्रभु के परिवार में 84,000 साधु, तीन लाख साध्वियाँ 3,00,000 श्रावक व 5,54,000 श्राविकाएँ थीं । 4750 चौदह पूर्वी 9000 अवधिज्ञानी 20,000 केवली 600 वैक्रियलब्धि वाले 12650 मनः पर्यवज्ञानी थे ।

अपना निर्वाणकाल निकट जानकर ऋषभदेव प्रभु अष्टापद पर्वत पर पधारे । वहाँ प्रभु के साथ 10,000 मुनियों ने छह उपवास पूर्वक पादोपगमन नाम का अनशन किया ।

प्रभु द्वारा अनशन स्वीकार के समाचार मिलते ही भरत भी अपने परिवार के साथ अष्टापद पर्वत पर आ गया । उसने पर्यंकासन में बैठे प्रभु को देखा ! उसने प्रभु को प्रदक्षिणा दी...तत्पश्चात् प्रभु के चरणों में बैठ गया ।

तीसरे आरे की पूर्णाहुति के 89 पक्ष बाकी थे, माघ कृष्णा 13 का दिन

था। उस दिन अघाति कर्मों का क्षय कर प्रभु ने शाश्वत सिद्ध पद प्राप्त किया। प्रभु के निर्वाण से भरत को अत्यंत ही आघात लगा।

तत्पश्चात् देवताओं ने प्रभु का विधि पूर्वक अग्नि-संस्कार किया। उसके बाद वे देवता नंदीश्वर द्वीप पर गए और वहाँ पर उन्होंने प्रभु के निर्वाण कल्याणक का महोत्सव किया। भरत ने प्रभु के अग्नि-संस्कार की भूमि पर तीन कोस ऊँचा सिंहनिषद्या नाम का रत्नमय प्रासाद बनवाया। उस मंदिर में 24 तीर्थंकरों के देह प्रमाण वाली रत्नमय प्रतिमाएँ स्थापित कीं।

उस चैत्य में भरत ने अपने 99 भाइयों की भी रत्नमय प्रतिमाएँ भराईं और प्रभु की सेवा करती हुई एक अपनी प्रतिमा भी स्थापित की।

उसके बाद उस पर्वत के चारों ओर मेखला के समान ऐसे एक-एक योजन के आठ सोपान बनाए। तभी से वह पर्वत अष्टापद तीर्थ के नाम से प्रख्यात हुआ।

भरत महाराजा को केवलज्ञान

छह खंड के अधिपति होते हुए भी भरत महाराजा अंतर से सर्वथा अलिप्त थे। ठीक ही कहा है, **``भरत जी मन ही में वैरागी, भरत जी मन ही में वैरागी।''** 96 करोड़ ग्राम के अधिपति, 64 हजार देवांगना जैसी स्त्रियों के पति, 32,000 मुकुटबद्ध राजाओं के स्वामी, 14 रत्न, 9 निधि, 9 महासिद्धि आदि आदि भौतिक समृद्धि के भोक्ता होते हुए भी वे अंतर से सर्वथा न्यारे थे।

एक बार भरत महाराजा स्नान कर कीमती वस्त्र व आभूषणों से अलंकृत होकर आदर्शगृह में पधारे। वहाँ अचानक उनकी एक अंगुली में से एक मुद्रिका नीचे गिर पड़ी। अचानक उनकी नजर उस अंगुली पर गई। उन्होंने अंगूठी रहित अंगुली को कांतिहीन देखा। अरे ! यह अंगुली शोभा रहित कैसे हो गई ? उसी समय उन्होंने जमीनपर पड़ी मुद्रिका देखी। वे सोचने लगे, क्या दूसरे अंग भी आभूषण रहित इसी तरह शोभाहीन होंगे ? इस प्रकार विचार कर वे अपने शरीर पर से एक एक आभूषण उतारने लगे। मस्तक पर से मुकुट उतारा और वह मस्तक शोभाहीन लगा। तत्पश्चात् कानों में से कुंडल, गले में से हार, हाथों में से भुजबंध, पैर में से कटक निकाल दिया।

वे सोचने लगे, ``अहो ! इस शरीर को धिक्कार हो ! आभूषणों से

शरीर की कृत्रिम शोभा की जाती है...अंदर तो मल, मूत्र, विष्टा आदि अशुद्ध पदार्थ रहे हुए हैं। जो मनुष्य विषयों का त्याग कर इस शरीर द्वारा तप आदि की साधना करते हैं, वे ही इस शरीर का वास्तविक फल पाते हैं।''

इस प्रकार अनित्यादि भावनाओं से भावित हुए भरत महाराजा क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए और वहीं पर घाती कर्मों का सर्वथा क्षय कर वीतराग केवली बन गए।

उसी समय इन्द्र का आसन कंपित हुआ। इन्द्र ने प्रार्थना की, ``हे भगवंत! आप द्रव्यलिंग को स्वीकार करें ताकि मैं आपको वंदना करूँ और आपके निष्क्रमण का महोत्सव कर सकूँ।''

उसी समय भरत ने पंच मुष्टि लोच किया और इन्द्र द्वारा प्रदत्त श्रमण वेष स्वीकार किया। उसके बाद इन्द्र ने उनको वंदना की...क्योंकि केवलज्ञान होने पर भी अदीक्षित पुरुष को वंदना नहीं की जाती।

न जातु वंद्यते प्राप्तकेवलोऽपि ह्यदीक्षितः।

उसी समय भरत के आश्रित 10,000 राजाओं ने भी दीक्षा ली। इन्द्र ने भरत के पुत्र आदित्ययशा का राज्याभिषेक किया। भरत केवली ने 1 लाख पूर्व वर्ष तक पृथ्वीतल पर विचरण कर अनेक जीवों को प्रतिबोध दिया। उसके बाद अष्टापद तीर्थ पर 1 मास का अनशन कर शाश्वत मोक्ष पद प्राप्त किया। देवताओं के साथ इन्द्र ने उनके निर्वाण का महोत्सव किया।

ब्राह्मी और सुंदरी साध्वीजी का भी अष्टापद पर्वत पर मोक्ष हुआ।

2. सगर-चक्रवर्ती

जंबुद्वीप का भरत क्षेत्र, विनीता नगरी, ऋषभदेव प्रभु के निर्वाण के बाद इक्ष्वाकुवंश में असंख्य राजा उत्पन्न हुए। वे सभी राजा अपने शुद्धभाव और शुभभाव के फलस्वरूप मोक्ष और सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए।

इसी वंश में **जितशत्रु** नाम के राजा हुए। उनकी महारानी का नाम **विजयादेवी** था। जितशत्रु राजा का एक छोटा भाई था, जिसका नाम **सुमित्रविजय** था, वह असाधारण पराक्रमी था। उसकी पत्नी का नाम **वैजयंती** था।

वैशाख मास की शुक्ला त्रयोदशी के शुभ दिन **विमलवाहन** की आत्मा का देव आयुष्य पूर्ण हुआ और उसी दिन रोहिणी नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर विमलवाहन की आत्मा का विजयादेवी की कुक्षि में अवतरण हुआ।

तीर्थंकर की महान् आत्मा का गर्भ में अवतरण होने के फलस्वरूप उसी रात्रि के चौथे प्रहर में विजयादेवी ने तीर्थंकर के जन्म-सूचक चौदह महास्वप्न देखे। विजयादेवी गर्भवती बनी, उस गर्भ के प्रभाव से नरक के जीवों को भी क्षणभर के लिए परमसाता का अनुभव हुआ।

हाथी, ऋषभ, सिंह, श्रीदेवी, फूलों की माला आदि चौदह वस्तुओं को विजयादेवी ने अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखा।

भावी में होनेवाले अजितनाथ तीर्थंकर परमात्मा का यह च्यवन कल्याणक था। उसी समय इन्द्र का अचल सिंहासन भी कंपित हो गया। इन्द्र ने अपने निर्मल अवधिज्ञान के द्वारा अजितनाथ प्रभु के च्यवन कल्याणक को देखा। उसी समय वे अपने सिंहासन पर से खड़े हो गए। पादपीठ से नीचे उतरकर 7-8 कदम आगे बढ़कर योगमुद्रा में बैठकर '**शक्रस्तव**' के माध्यम से इन्द्र ने स्तवना की।

इधर उसी रात्रिमें सुमित्रविजय की पत्नी वैजयंती ने भी भावी चक्रवर्ती के सूचक कुछ अस्पष्ट चौदह महास्वप्न देखे।

प्रात:काल होने पर विजया ने स्वप्न का सारा वृत्तांत जितशत्रु राजा को कहा।

विजयादेवी के मुख से सुंदर स्वप्नों को सुनकर राजा के हर्ष का पार न रहा। उसने कहा, "**हे देवी ! इन सुंदर महास्वप्नों के फलस्वरूप तू सूर्य के समान अत्यंत ही तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म देगी।**"

राजा अपनी महारानी के साथ इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहा था कि इसी बीच सुमित्रविजय भी वहाँ आ गया। उसने राजा को नमस्कार किया, तत्पश्चात् उसने कहा, "**हे राजन् ! आज रात्रि के अंतिम प्रहर में वैजयंती ने 14 महास्वप्न देखे हैं।**"

राजा ने कहा, "**महारानी ने भी ये स्वप्न स्पष्ट रूप से देखे हैं। यद्यपि ये स्वप्न महाशुभ फलदायी हैं, फिर भी इन स्वप्नों के विशेष अर्थ को जानने के लिए स्वप्नशास्त्र के ज्ञाता विद्वान् पुरुषों को बुलाना चाहिए।**"

उसी समय राजा की आज्ञा होते ही प्रतिहारी स्वप्नशास्त्र के ज्ञाता निमित्तज्ञों को बुलाने के लिए चला गया।

राजा के आदेश को प्राप्तकर निमित्तशास्त्र के ज्ञाता निमित्तज्ञ ठीक समय पर वहाँ उपस्थित हो गए। उन निमित्तज्ञों ने महाराजा और युवराज के मुख से चौदह स्वप्नों का वर्णन सुनकर, उनके फलादेश के संदर्भ में परस्पर विचार-विमर्श किया, उसके बाद उन्होंने कहा, "**विजयादेवी ने जिन महास्वप्नों को देखा है, उनके फलस्वरूप वह तीर्थंकर की आत्मा को जन्म देगी और वैजयंती ने जिन स्वप्नों को देखा है, उनके फलस्वरूप वह चक्रवर्ती पुत्ररत्न को जन्म देगी।**"

निमित्तज्ञों के मुख से इन स्वप्नफलों को सुनकर महाराजा प्रसन्न हो गए और उन्होंने उन स्वप्न पाठकों को अमाप संपत्ति का दान देकर उनका दारिद्र्य सदा के लिए दूर कर दिया।

इस प्रकार अनेक देव-देवियों से सेवित विजया महारानी प्रसन्नता पूर्वक गर्भ को वहन करने लगी।

धीरे-धीरे गर्भकाल व्यतीत हुआ और माघ शुक्ला अष्टमी के शुभ दिन रोहिणी नक्षत्र में चंद्रमा का योग होने पर, सभी ग्रह उच्च स्थिति में रहे हुए थे, ऐसे मंगलकारी क्षणों में विजयादेवी ने अत्यंत ही तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया। माता को प्रसूतिसंबंधी लेश भी पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ।

क्षणभर के लिए त्रिभुवन में भी उद्योत हो गया । नरक के जीवों को भी क्षणभर के लिए प्रसन्नता की अनुभूति हुई ।

इधर प्रभु के जन्म के साथ ही सौधर्म इन्द्र का अचल सिंहासन भी कंपित हो उठा । अपने अचल सिंहासन को कंपित देखकर पहले तो इन्द्र को भी गुस्सा आ गया, परंतु जब उन्होंने अपने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया तो उनके पश्चाताप का पार न रहा, वे प्रभु से क्षमायाचना करने लगे । अपने सिंहासन पर से नीचे उतर आए और प्रभु के जन्म की दिशा में 7-8 कदम आगे बढ़कर **'शक्रस्तव'** के माध्यम से प्रभु की स्तवना की और मेरु पर्वत पर प्रभु का जन्म महोत्सव मनाया ।

उसके बाद हरिणगमेषी देव के द्वारा घंटनाद के साथ ही सौधर्म देवलोक के बत्तीस लाख विमानों में भी घंटनाद होने लगे ।

दस दिन के बाद राजपुत्र के नामकरण का महोत्सव मनाया गया । जितशत्रु राजा ने अपने पुत्र का नाम **अजित** और युवराज ने अपने पुत्र का नाम **'सगर'** रखा ।

इन्द्र की आज्ञा से पाँच धावमाताएँ अजित प्रभु का पालन-पोषण करने लगीं । तीर्थंकर परमात्मा जन्म के बाद माँ का स्तनपान नहीं करते । इन्द्र उनके हाथ के अंगूठे में अमृत का संचार करते हैं, उसी का वे पान करते हैं ।

धीरे-धीरे दोनों राजकुमार बड़े होने लगे । जिनेश्वर की आत्मा जन्म से ही निर्मल मति, श्रुत और अवधिज्ञान से युक्त होती है, अत: अजित कुमार को विद्याभ्यास के लिए कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ा । सारी विद्याएँ उन्हें अनायास ही सिद्ध हो गईं ।

अल्पकाल में सगर भी सभी शास्त्रों और शस्त्रकलाओं में निपुण हो गया ।

दोनों राजकुमार वज्रऋषभनाराच संघयण एवं समचतुरस्त्र संस्थान से युक्त थे । दोनों सुवर्ण के समान कांतिवाले थे । दोनों 450 धनुष्य ऊँचे थे । उनके वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिह्न था ।

दोनों राजकुमारों ने यौवन के प्रांगण में प्रवेश किया । उनका रूप चंद्रमा की सोलह कलाओं की भाँति खिल उठा ।

अजितनाथ प्रभु का रूप तो वैमानिकदेव, ग्रैवेयक देव और अनुत्तरवासी देव तथा आहारक शरीरी से भी बढ़कर था ।

एक बार जितशत्रु राजा ने अजितकुमार के आगे लग्न का प्रस्ताव रखा । ***यद्यपि तीर्थंकर परमात्मा जन्म से सांसारिक भोग-सुखों से विरक्त होते हैं । उन्हें लग्नजीवन का लेश भी आकर्षण नहीं होता है, फिर भी वे एक मात्र अपने भोगावली कर्म का क्षय करने के लिए ही लग्नजीवन स्वीकार करते हैं ।***

अजितनाथ प्रभु ने भी अपने ज्ञान के बल से देखा कि उनके भोगावली कर्म बाकी हैं । बस, एक मात्र अपने भोगावली कर्मों को खपाने के लिए ही उन्होंने अपने लग्नजीवन के प्रस्ताव को स्वीकार किया ।

अजितकुमार ने सैकड़ों रूपवती राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया । इन्द्रियों से नहीं जीते हुए अजितकुमार अनासक्त भाव से भोगक्रीड़ा करने लगे ।

एक दिन संसार से उद्विग्न बने जितशत्रु राजा अठारह लाख पूर्व व्यतीत हुए अजितकुमार आदि को बोले, ``अपने पूर्वज मर्यादित समय तक पृथ्वी का पालन कर, समर्थ बने पुत्रों को राजगद्दी सौंपकर मोक्ष की प्राप्ति के लिए त्याग धर्म को स्वीकार करते थे । अत: तुम इस राज्य को स्वीकार कर मुझे व्रत ग्रहण करने के लिए सहमति प्रदान करो ।''

पिता की इस चारित्र भावना को जानकर अजितकुमार ने कहा, ``**हे तात ! यह आपके लिए योग्य है । भोगकर्मफल विघ्नरूप न हो तो मैं भी व्रत ग्रहण की इच्छावाला ही हूँ । विवेकी पुरुष अन्य के व्रतग्रहण में अंतराय नहीं करते हैं, अत: मैं आपके लिए अंतरायभूत कैसे बनूँ । जो पुत्र भक्ति से भी अपने पिता के चतुर्थ मोक्ष पुरुषार्थ में अंतराय करता है वह पुत्र कहलाने के योग्य नहीं है । फिर भी मेरी यह प्रार्थना है कि आप अपना यह राज्य लघु पिता (चाचा) सुमित्रविजय को प्रदान करने की कृपा करें, क्योंकि हम से भी वे बढ़कर हैं ।**''

अजितकुमार की यह बात सुनकर सुमित्रविजय ने कहा, ``**राज्यप्राप्ति के लिए मैं स्वामी की चरणरज को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हूँ । राज्य से भी मैं गुरुसेवा को अधिक मानता हूँ ।**''

अजितकुमार ने कहा, **``आप राज्य ग्रहण करना नहीं चाहते हो तो भाव से यति होकर घर में रहो ।''** उसी समय राजा ने कहा, **``हे बंधु ! पुत्र के इस वचन को तुम स्वीकार करो ।''** यह साक्षात् तीर्थंकर है और इसके शासन में तुम्हारी इच्छा पूर्ण होनेवाली है । तुम अति उत्सुक मत बनो । तुम इसे धर्मचक्री के रूप में और अपने पुत्र को चक्री के रूप में देखकर अधिक सुख प्राप्त कर सकोगे ।

यद्यपि सुमित्र की इच्छा दीक्षा ग्रहण करने की थी, फिर भी उन्होंने बड़े भाई की बात स्वीकार की ।

जितशत्रु राजा ने बड़े महोत्सव के साथ अजितकुमार का राज्याभिषेक किया । अजितकुमार ने सगरकुमार को युवराज के पद पर स्थापित किया ।

शुभ मुहूर्त में अजित राजा ने बड़ी धूमधाम से अपने पिता के महाभिनिष्क्रमण का महोत्सव किया । जितशत्रु ने ऋषभदेव प्रभु के तीर्थ में विद्यमान स्थविर मुनि के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की । संयमजीवन के स्वीकार के बाद उसका निरतिचार पालन कर घाति- अघाति सभी कर्मों का क्षयकर जितशत्रु महामुनि शाश्वत पद के भोक्ता बने ।

अजितराजा न्याय और नीतिपूर्वक प्रजा का पालन-पोषण करने लगे । राज्य की धुरा को वहन करते हुए अजितराजा को तिरेपन लाख पूर्व वर्ष व्यतीत हो गए ।

एक दिन सभा का विसर्जन कर एकांत में बैठे हुए अजितराजा सोचने लगे । `अब मेरा भोगावली कर्म लगभग क्षीण हो चुका है, अत: अब मुझे आत्मसाधना के लिए योग्य कदम उठाना चाहिए । संसार में जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है ।'

संसार से निर्वेद पाए हुए अजितराजा इस प्रकार सोच ही रहे थे, तभी सारस्वत आदि नौ लौकांतिक देवों ने आकर प्रभु से विनती करते हुए कहा, **``हे प्रभो, यद्यपि आप स्वयंबुद्ध हो, आपको बोध देने के लिए हम लायक नहीं हैं । फिर भी हम आपको विनती करते हैं कि जगत् के जीवों के उद्धार के लिए आप धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो ।''** इतना कहकर वे देव चले गए ।

उसी समय अजितराजा ने सगर को बुलाया और कहा, **``तुम इस राज्य को ग्रहण करो ताकि मैं आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ सकूँ ।''**

अजित राजा की यह बात सुनकर आँखों से आँसू बहाते हुए सगर ने कहा, **''हे स्वामिन् ! मैंने आपका कौनसा अपराध किया है कि आप मुझे अलग करना चाहते हो ? आपके बिना इस राज्य से भी मुझे कोई लेना-देना नहीं है । यद्यपि आप नि:स्पृह हो, ममता रहित हो, फिर भी मैं आपके चरणों की सेवा नहीं छोडूंगा । इस राज्य एवं पुत्र-परिवार का त्याग मेरे लिए आसान है । परंतु आपका वियोग मेरे लिए दु:सह्य है ।''**

''हे नाथ ! आप राजा बने तब मैं युवराज बना तो अब आप साधु बनेंगे तो मैं आपका शिष्य बनूंगा । मैं आपके साथ ही दीक्षा लूंगा, आपके साथ ही विहार करूंगा ।''

सगरकुमार की इन बातों को सुनकर अजित राजा ने कहा, **''हे बंधु ! संयम ग्रहण करने के लिए तुम्हारा आग्रह योग्य है, परंतु मेरी तरह तेरा भोगावली कर्म क्षीण नहीं हुआ है, अत: क्रम से प्राप्त इस राज्य को तुम ग्रहण करो और मैं दीक्षा अंगीकार करूंगा ।''**

स्वामी के विरह से भी उनकी आज्ञा का भंग अधिक दु:खदायी है । इस प्रकार विचारकर सगर ने अजित राजा की बात मान ली ।

एक शुभ दिन अजित राजा ने सगर का महोत्सव पूर्वक राज्याभिषेक किया ।

उसके बाद अजितस्वामी ने सांवत्सरिक दान देना प्रारंभ किया । वे प्रतिदिन प्रात:काल से मध्याह्न तक दान देते थे । **''आओ ! पधारो और धन ले जाओ ।' इस प्रकार नगर में चारों ओर दान की उद्घोषणाएँ की गईं । प्रभु प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सोना मोहरों का दान करते थे, एक वर्ष दरम्यान उन्होंने 388 करोड़ और 80 लाख सुवर्णमुद्राओं का दान किया ।''**

वार्षिक दान के अंत में इन्द्र का सिंहासन पुन: कंपित हुआ । प्रभु के दीक्षा महोत्सव को मनाने के लिए इन्द्र ने सामानिक आदि देवताओं को भी आज्ञा की ।

अच्युत आदि सभी इन्द्रों ने तथा सगर आदि नरेन्द्रों ने प्रभु का अभिषेक किया । उसके बाद प्रभु के शरीर पर विलेपन किया गया । प्रभु के देह को मूल्यवान वस्त्रों और अलंकारों से अलंकृत किया गया ।

एक हजार पुरुषों के द्वारा वहन की जानेवाली **सुप्रभा** नाम की शिविका

में प्रभु आरूढ़ हुए । सिंहासन पर बिराजमान प्रभु के दोनों ओर ईशान इन्द्र और सौधर्म इन्द्र चामर वींजने लगे ।

शिविका में आरूढ़ प्रभु धीरे-धीरे आगे बढ़े और **सहस्त्राम्रवन** में पधारे । शिविका से उतरकर प्रभु ने अपने देह पर रहे सभी वस्त्र और अलंकारों को उतार दिया । इन्द्र ने प्रभु को देवदूष्य प्रदान किया । माघ शुक्ला नवमी के शुभदिन **रोहिणी** नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर **सप्तच्छद** वृक्ष के नीचे छट्ठ तपपूर्वक सायंकाल में प्रभु ने अपने हाथों से ही पंचमुष्टि लोच किया ।

सौधर्म इन्द्र ने अपने उत्तरीय वस्त्र के अंचल में उन बालों को बहुमानपूर्वक ग्रहण किया और फिर उन्हें क्षीर समुद्र में डाल दिया ।

उसके बाद सिद्धों को नमस्कार कर प्रभु ने सामायिक की प्रतिज्ञा स्वीकार की । उसी समय प्रभु को चौथा मन:पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ । प्रभु के साथ उस समय 1000 राजाओं ने भी भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

कुमार अवस्था में प्रभु के 18 लाख पूर्व व्यतीत हुए । राज्यावस्था में एक पूर्वांग सहित त्रेपन लाख पूर्व व्यतीत हुए । छद्मस्थ अवस्था में 12 वर्ष व्यतीत हुए तथा केवली अवस्था में एक पूर्वांग और 12 वर्ष न्यून 1 लाखं पूर्व व्यतीतकर 72 लाख पूर्व के आयुष्य को पूर्णकर 1000 मुनियों के साथ मोक्ष पधारे ।

उस समय नरक के जीवों को भी क्षणभर साता का अनुभव हुआ ।

शोक सहित इन्द्र ने प्रभु के देह का प्रक्षालन किया । गोशीर्ष चंदन से देहपर विलेपन किया । बहुमूल्य वस्त्र और अलंकारों से प्रभु को अलंकृत कर प्रभु के देह को शिविका में आरूढ़ किया ।

प्रभु के देह को चिता पर स्थापित किया गया । अग्निकुमार देव ने अग्नि प्रज्वलित की, वायुकुमार देव ने वायु को पैदा किया, फिर शक्र के आदेश से अन्य देवताओं ने उस चिता में घी, कपूर आदि का प्रक्षेप किया ।

उसके बाद मेघकुमार देव ने जल की वृष्टि कर चिता शांत की ।

प्रभु की ऊपर की दायीं और बायीं दाढ़ाओं को शक्र और ईशान इंद्र ने तथा नीचे की दायीं-बायीं दाढ़ाओं को चमरेन्द्र व बलीन्द्र ने ग्रहण किया ।

शेष इंद्रों ने प्रभु के दाँत व अन्य देवताओं ने अस्थि आदि को ग्रहण किया।

प्रभु की निर्वाण भूमि पर रत्नमय स्तूप की रचना की गई। उसके बाद नंदीश्वर द्वीप पर जाकर देवताओं ने शाश्वत प्रतिमाओं की भक्ति स्वरूप अष्टाह्निक महोत्सव किया।

सामूहिक पाप का उदय

सगर चक्रवर्ती के जह्नुकुमार आदि 60000 पुत्र थे। एक बार जह्नुकुमार अपने सभी भाइयों व विशाल सैन्य के साथ तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़ा।

अनेक प्राचीन तीर्थों की यात्रा करता हुआ जह्नुकुमार अष्टापद तीर्थ पर पहुँचा। अष्टापद पर्वत पर युगादिदेव आदिनाथ प्रभु का निर्वाण हुआ था। प्रभु की याद में भरत महाराजा ने वहाँ पर **सिंहनिषद्या** नाम के जिनमंदिर का निर्माण कराया था। उस मंदिर में इस अवसर्पिणी के सभी तीर्थंकरों की स्वदेह प्रमाण रत्नमय प्रतिमाओं का निर्माण भरत महाराजा ने कराया था।

जह्नुकुमार ने अपने विशाल परिवार के साथ अष्टापद तीर्थ के दर्शन किये। युगादिदेव आदिनाथ आदि की विशालकाय मनमोहक प्रतिमाओं के दर्शन कर जह्नुकुमार आदि भावविभोर हो गये।

प्रभु प्रतिमाओं के दर्शन-वंदन-पूजन कर उन्होंने अपने सम्यग् दर्शन को निर्मल किया।

अपने बंधुओं से विचार-विमर्श करते हुए जह्नुकुमार ने कहा, **''यह अवसर्पिणी काल है, अतः धीरे-धीरे लोगों की बुद्धि का ह्रास होता जाएगा। बुद्धि में मलिन तत्त्वों का प्रवेश होगा। बुद्धि की पवित्रता लगभग समाप्त हो जाएगी, अतः कालक्रम से अपने पूर्वजों के द्वारा निर्मित इस तीर्थ को भविष्य में नुकसान न हो, इस हेतु हमें योग्य प्रयत्न व पुरुषार्थ करना चाहिए। मुझे लगता है कि यदि इस तीर्थ के चारों ओर गहरी खाई खोद दी जाय तो इस तीर्थ का आसानी से रक्षण हो सकेगा।''**

तीर्थ-रक्षा के लिए प्रस्तुत जह्नुकुमार का यह विचार सभी भाइयों को पसंद आया। बस, समझदार को इशारा काफी है, इस प्रकार खाई निर्माण का निर्णय कर सभी भाई अष्टापद तीर्थ के चारों ओर गहरी खाई खोदने में जुट गए।

पृथ्वी के पिंड प्रमाण गहरी खाई खोदने के फलस्वरूप नागलोक के भवनों में रज-वृष्टि होने लगी। यह दृश्य देख सभी नागकुमार देवता कोपायमान हो गए। **ज्वलनप्रभ** नाम के नागपति भी गुस्से में आ गए। अपने अवधिज्ञान द्वारा जब नागपति ने रज की वृष्टि के कारण रूप में सगर चक्रवर्ती के पुत्र जह्नुकुमार आदि को देखा, तो तत्काल ही अपने कोप को छोड़कर वे सगरचक्री के पुत्रों के पास आ गए और बोले, **``पुत्रो ! तुम तो भरत चक्री के वंशज हो और खूब विवेकी हो, तो फिर ऐसा अविवेकपूर्ण कार्य करने के लिए क्यों तैयार हुए हो ? इस प्रकार पृथ्वी को खोदने से नागकुमार देवता नाराज हो रहे हैं, अतः तुम यह काम छोड़ दो।''**

ज्वलनप्रभ की यह बात सुनकर जह्नुकुमार आदि ने खाई खोदने का काम छोड़ दिया। ज्वलनप्रभ ने वहाँ से विदाई ले ली।

ज्वलनप्रभ के चले जाने के बाद जह्नुकुमार ने सोचा, **``जल बिना की यह खाई तो कालक्रम से धूल आदि से वापस भर जाएगी, फिर वापस इसे कोई भी पार कर सकेगा, अतः क्यों न इस खाई को जल से भर दिया जाय''**, इस प्रकार विचार कर जह्नुकुमार ने दंडरत्न से समुद्र में से गंगा नदी के प्रवाह को ला दिया और वह खाई पानी से भर दी।

पानी से खाई भरने से नागलोक के भवनों में पानी नीचे गिरने लगा। यह दृश्य देख ज्वलनप्रभ देव एकदम कुपित हो गया और सोचने लगा, **``अहो ! सगरचक्री के ये पुत्र बड़े अभिमानी लगते हैं, मेरी हितकारी बात की भी ये परवाह नहीं करते हैं।''** इस प्रकार सोचकर गुस्से में आकर उस ज्वलनप्रभ देव ने सगरचक्री के सभी 60000 पुत्रों को अपनी विषमय दृष्टि से जलाकर भस्मीभूत कर दिया। सगर चक्रवर्ती के 60000 पुत्रों को मृत्युदंड की महाभयंकर सजा देकर ज्वलनप्रभ देव अपने भवन में चला गया।

अपनी आँखों के सामने सगर चक्रवर्ती के 60000 पुत्रों के भस्मीभूत हो जाने से चक्रवर्ती के सैन्य में एकदम हाहाकार मच गया और वे कल्पांत रुदन करने लगे।

चक्रवर्ती की पुत्रवधुएँ भी भयंकर विलाप और शोक करने लगीं।

सेनापति, सामंत राजा और मंडलेश आदि भी शोक करने लगे।

आखिर धैर्य धारणकर वे सोचने लगे, ``**मृत्यु के आगे किसका वश चलता है ? अत: अब यहाँ ठहरना उचित नहीं है ।**'' इस प्रकार सोचकर सेनापति अंत:पुर आदि को लेकर अयोध्या की ओर आगे बढ़ने लगे ।

क्रमश: आगे बढ़ते हुए वे अयोध्या नगरी के बाहर पहुँच गए । नगर के बाहर पहुँचने पर वे परस्पर कहने लगे, ``**राजा ने हमें समर्थ समझकर अपने पुत्रों के साथ अष्टापद पर भेजा था, अब उन पुत्रों के बिना हम राजा को अपना मुँह किस प्रकार बता पाएंगे ? एक साथ सभी पुत्रों के मरण का वृत्तांत राजा को कैसे कह सकेंगे ? ऐसे दु:खद समाचार से तो शायद चक्रवर्ती भी नहीं जी पाएंगे, अत: अपने स्वामी चक्रवर्ती को यह समाचार देने के बजाय तो हमें स्वयं ही मृत्यु की शरण स्वीकार कर लेनी चाहिए ।**''

तभी ब्राह्मण के वेष में आए इन्द्र ने उन सबको संबोधित करते हुए कहा, ``**अरे ! तुम सब लोग इतने उदास क्यों बन गए हो ? तुम्हारे स्वामी के 60000 पुत्र युगलिक की भाँति एक साथ में मृत्यु के शिकार बने हैं तो उसमें इतना खेद करने की क्या जरूरत है ? कई बार एक साथ में पैदा हुए भी अलग-अलग स्थानों में मृत्यु प्राप्त करते हैं तो कई बार अन्य-अन्य स्थानों में जन्मे हुए भी एक साथ मृत्यु के शिकार बन जाते हैं । जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी हुई है, अत: उस मौत से बचने का प्रयत्न करना उचित नहीं है । यदि मृत्यु से बचना शक्य होता तो इन्द्र व चक्रवर्तियों की मौत क्यों होती ?**''

``**कदाचित् प्रलयकाल की अग्नि को शांत किया जा सके, परंतु जन्मे हुए को मृत्यु से बचाना तो बिल्कुल अशक्य ही है ।**''

ब्राह्मण की यह बात सुनकर सेनापति ने कहा, ``**सगर चक्रवर्ती ने अपने 60000 पुत्र हमें सौंपे थे, उन सबकी इतनी छोटी उम्र में एक साथ में अकाल मृत्यु हो गई, अत: ये समाचार हम राजा को कैसे दे पाएंगे ?**''

ब्राह्मण ने कहा, ``**इसकी तुम चिंता मत करो । राजा को ये समाचार देने की जवाबदारी मैं लेता हूँ, तुम निश्चिंत बन जाओ ।**'' इस प्रकार सामंत आदि सभी को आश्वासन देकर उस ब्राह्मण ने अयोध्यानगरी में प्रवेश किया । अपने हाथों में मृत बालक को लेकर सगर चक्रवर्ती के राजमहल के पास में जाकर जोर-जोर से अत्यंत करुण कल्पांत रुदन करने लगा ।

रुदन के साथ वह ब्राह्मण जोर से चिल्लाने लगा, **''हे सगर चक्रवर्ती ! आप तो अत्यंत ही न्यायप्रिय हो, आपके जैसे रक्षक विद्यमान होते हुए भी मुझे लूटा गया है।''**

उस ब्राह्मण के कल्पांत रुदन को सुनकर सगर चक्रवर्ती ने उसे अपने पास बुलाया और प्रेम से आश्वासन देते हुए कहा, **''तुम कौन हो ? कहाँ से आ रहे हो और तुम्हें किसने लूटा है ? क्या किसी ने तुम्हारा धन चुरा लिया है ? अथवा किसी विश्वासघाती ने तुम्हारी न्यास जब्त कर ली है ? तुम्हें जो दुःख हो, वह मुझे कहो, मैं तुम्हारे दुःख का अवश्य निवारण करूंगा।''**

राजा के आश्वासन भरे इन शब्दों को सुनकर उस ब्राह्मण ने कहा, **''आपके जैसे न्यायप्रिय शासक विद्यमान हों तो मेरी बाह्य संपत्ति को कौन लूट सकता है ? आप साक्षात् कल्पवृक्ष तुल्य हो तो दरिद्रता भी मुझे कैसे हैरान कर सकती है ? अन्य किसी बात का मुझे दुःख नहीं है, मुझे तो मात्र एक ही बात का दुःख है।''** सगरचक्री ने कहा, **''बोलो ! जल्दी बोलो ! तुम्हें किस बात का दुःख है ?''**

उस ब्राह्मण ने कहा, **''मैं अश्वभद्र नगर में रहनेवाला अग्निहोत्री ब्राह्मण हूँ। विद्याभ्यास करके जब मैं अपने घर आया, तब पता चला कि मेरा इकलौता बेटा मर गया है। पुत्र के मरण को देख मैं धरती पर गिर पड़ा। मैं और मेरी पत्नी जोर-जोर से आक्रंदन करने लगे।''**

रात्रि में कुलदेवी ने आकर मुझे आश्वासन देते हुए कहा, **''अपने पुत्र की मृत्यु से तू व्यर्थ ही शोक क्यों करता है ? तू मेरे आदेश के अनुसार करेगा तो तेरा पुत्र पुनः जीवित हो जाएगा।''**

''क्या है आपका आदेश ?''

''जिसके घर में आज तक किसी की मृत्यु नहीं हुई हो उस घर से तू मांगलिक अग्नि लेकर आ जा।''

''कुलदेवी की यह बात सुनकर अपने बालक को पुनः जीवित देखने की इच्छा से मैं अनेक गाँव-नगरों में घूमा। अनेक घरों में जाकर मैंने भीख मांगी। परंतु कहीं से भी मुझे वह अग्नि प्राप्त नहीं हुई।''

मैंने पुनः कुलदेवी से निवेदन किया। कुलदेवी ने कहा, ''यदि कोई मंगल गृह न मिले तो मैं तुम्हारे अमंगल को कैसे दूर करूँ ?''

देवी के इस जवाब को सुनकर, हे राजन् ! आज मैं इस नगर में आया हूँ। आप तो पृथ्वी के स्वामी और प्रजा के रक्षक हो। मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप कहीं से भी मुझे मंगल अग्नि लाकर प्रदान करो, ताकि पुत्रवियोग की पीड़ा से मैं मुक्त हो सकूँ।''

संसार के नश्वर स्वरूप को अच्छी तरह से जानने व समझनेवाले सगर चक्रवर्ती ने उस ब्राह्मण को समझाते हुए कहा, **''बंधुवर्य ! 64 इंद्रों से पूजित और मेरु को दंड एवं पृथ्वी को छत्र बनाने में शक्तिशाली ऐसे ऋषभदेव प्रभु भी मृत्यु से बच नहीं पाये। उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत, जो प्रथम चक्रवर्ती थे, वे भी मृत्यु से बच नहीं पाए।'' उनके लघुबंधु अतुल पराक्रमी बाहुबलीजी भी अपने आयुष्य बल को बढ़ा नहीं सके। उनकी पाट-परंपरा में आए आदित्ययश राजा, अतिबल राजा, बलवीर्य राजा आदि सभी मौत के शिकार हुए हैं।''**

ऋषभदेव प्रभु की पाट परंपरा में हुए असंख्य राजा, जो अतुल पराक्रमी थे, फिर भी मौत के आगे उनकी एक न चली, वे भी मृत्यु के वश हुए हैं।

''संसार में जो भी जन्मा है, वह मौत से बच नहीं पाता है। अतः सभी को लागू पड़नेवाली मौत के लिए इतना शोक करना उचित नहीं है। मेरे घर में भी अनेक पूर्वज मरण की शरण हुए हैं तो ऐसी मंगल अग्नि तुम्हें कहाँ से प्रदान करूँ ?''

''बालक हो या वृद्ध, रोगी हो या नीरोग, दरिद्र हो या चक्रवर्ती, सभी मृत्यु के आधीन हैं, अतः हे द्विजवर्य ! शोक तो मोह का चिह्न है, अतः धैर्य धारणकर शोक का त्याग करो।''

राजा की इन बातों को सुनकर उस ब्राह्मण ने कहा, **''हे राजन् ! इस भवस्वरूप को मैं भी अच्छी तरह से जानता हूँ, परंतु पुत्र के मोह के कारण यह सब उपदेश भूल जाता हूँ। स्वयं के जीवन में जब तक ऐसी घटना नहीं बनती है, तभी तक यह उपदेश याद रहता है।**

'''महान् ज्ञानियों के वचनामृत से जिनका चित्त निर्मल बना है, ऐसे आपके जैसे विवेकी पुरुष ही ऐसे प्रसंगों में धैर्य धारण कर सकते हैं।''

''हे राजन् ! आपने मुझे उपदेश दिया है, वह उपदेश आपको भी याद

रखने जैसा है । आपके उपदेशानुसार जिस प्रकार मेरे लिए एक पुत्र के मरण का शोक करना उचित नहीं है उसी प्रकार आपके भी सभी पुत्रों का मरण हो जाय तो आपको भी शोक करना उचित नहीं है ।

हे राजन् ! कालयोग से आपके 60000 पुत्र एक साथ मृत्यु के मुख में पहुँच गए हैं ।''

जैसे ही ब्राह्मण ने यह बात कही, उसी समय सगर चक्रवर्ती के 60000 पुत्रों के साथ अष्टापद पर्वत पर गए हुए सामंत, राजा, सेनापति आदि भी वहाँ उपस्थित हो गए ।

सभी के मुँह उतरे हुए थे । किसी के चेहरे पर कोई उत्साह दिखाई नहीं दे रहा था । सगर चक्रवर्ती ने सभी को उदास देखा । तभी पूछा **''मेरे सभी पुत्र कहाँ हैं ?''**

तब मंत्री ने कोपायमान हुए ज्वलनप्रभ इंद्र का सारा वृत्तांत सुना दिया ।

एक साथ 60000 पुत्रों के मरण के समाचार सुनकर सगर चक्रवर्ती मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े और शोकातुर होकर भयंकर कल्पांत रुदन करने लगे । पुत्रमरण के समाचार से अत्यंत आकुल-व्याकुल बनी हुई उनकी माताएँ भी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं ।

राजमहल में चारों ओर हाहाकार मच गया । बाह्य उपचारों से कुछ समय बाद होश में आने पर राजा बोला, **''अहो ! अब तो मेरा सर्वनाश हो गया । ऋषभदेव प्रभु के वंश में आज तक कोई भी इस प्रकार लज्जावाली मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए हैं । सभी पूर्ण आयुष्य को भोगनेवाले हुए हैं । मेरे सभी पूर्वजों ने दीक्षा ली । वे या तो मोक्ष में गए या स्वर्ग में गए ।''**

''हे पुत्रो ! तुम तो सांसारिक सुखों को भोगे बिना, अकाल में ही मृत्यु के शिकार हो गए ।'' इस प्रकार करुण विलाप कर रहे सगर चक्रवर्ती को समझाते हुए उस ब्राह्मण ने कहा, **''हे राजन् ! आप तो महान् ज्ञानी हो । आपको समझाना, आपको उपदेश देना उचित नहीं है । मोहनिद्रा का नाश करने में सूर्य के समान ऐसे अजितनाथ प्रभु के आप बंधु हो, अत: आपको कोई बोध करे यह तो आपके लिए भी शर्म की बात है । यह संसार असार है'** यह बात आप दूसरों को समझाते हो तो आपको भी यह समझना और मानना ही

चाहिए। संसार की असारता एवं आयुष्य की क्षणभंगुरता का विचार कर आपको भी पुत्रमरण के शोक से सर्वथा मुक्त हो जाना चाहिए।''

ब्राह्मण के इन वचनों को सुनकर राजा को कुछ बोध हुआ किन्तु साथ ही पुत्रमरण के कारण थोड़ा मोह भी हुआ।

सगर चक्रवर्ती के पुत्रमरण के शोक को दूर करने के लिए मंत्री ने पुनः राजा को प्रेरणादायी उपदेश दिया।

धीरे-धीरे राजा का शोक दूर हुआ। वैराग्यमय वचनों को पुनःपुनः सुनने से राजा के दिल में भी इस असार संसार के प्रति वैराग्यभाव पैदा हो गया।

वे भी सोचने लगे, **''जगत् में रहे सभी जीव कर्म के आधीन हैं। उसी के अनुसार जीते हैं और मौत को भेंटते हैं। वास्तव में, इस संसार में होनेवाले सभी संगम स्वप्न तुल्य ही हैं। यह लक्ष्मी हाथी के कान की तरह अत्यंत ही चंचल है, अतः जब तक वृद्धावस्था इस शरीर को जर्जरित न बना दे, तब तक आत्मकल्याण की साधना कर लेनी चाहिए।''**

सगर चक्रवर्ती संसार की असारता के बारे में सोच ही रहे थे, तभी अष्टापद पर्वत के समीप रहनेवाले ग्रामवासी राजमहल के द्वार पर आकर चिल्लाने लगे, **''राजन्! आप हमारी रक्षा करो! रक्षा करो।''**

सगर चक्रवर्ती ने उन सबको अपने पास बुलाकर सन्ताप का कारण पूछा। उन्होंने कहा, **''अष्टापद के चारों ओर खोदी गई खाई को भरने के लिए आपके पुत्र दंडरत्न द्वारा गंगानदी के प्रवाह को वहाँ ले आए।''**

उस गंगानदी से वह खाई तो तत्काल भर गई, परंतु अब उस नदी का पानी आस-पास गाँवों में फैल गया है। परिणामस्वरूप अनेक गाँव डूब गए हैं। आप कृपाकर हमें बचाएँ।

नगरजनों की यह शिकायत सुनकर सगर चक्रवर्ती ने तत्क्षण अपने पौत्र भगीरथ को बुलाया और कहा, **''यह गंगानदी अष्टापद पर्वत के आसपास के गाँवों को डुबो रही है, अतः तुम तत्काल जाकर दंडरत्न द्वारा उसे आकर्षित कर पूर्व दिशा के सागर में प्रवाहित कर दो।''**

भगीरथ ने दादा के वचन को आदरपूर्वक स्वीकार किया।

पितामह की आज्ञा प्राप्तकर वह दंडरत्न के साथ अष्टापद पर्वत के पास आ गया ।

ज्वलनप्रभ नागकुमार को लक्ष्य कर भगीरथ ने अट्ठम तप किया । अट्ठम तप के प्रभाव से प्रसन्न हुआ ज्वलनप्रभ इन्द्र, भगीरथ के पास आया और बोला, **''तुमने मुझे क्यों याद किया ?''**

भगीरथ ने कहा, **''आपकी आज्ञा हो तो अनेक नगरों का नाश कर रही इस गंगा नदी को दंडरत्न द्वारा आकर्षित कर पूर्व सागर में प्रवाहित कर दूँ ।''**

प्रसन्न हुए ज्वलनप्रभ ने कहा, **''तुम्हारे इस कार्य के लिए मेरी सहमति है ।''** इतना कहकर वह इन्द्र अपने स्थान पर चला गया ।''

उसके बाद भगीरथ ने दंडरत्न द्वारा गंगानदी को आकर्षित कर कुरुदेश के मध्य भाग हस्तिनापुर के दक्षिण से कोशल देश के पश्चिम से प्रयाग के उत्तर में व विंध्याचल के दक्षिण में से ले जाकर पूर्व सागर में प्रवाहित कर दिया ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

एक बार सगरचक्रवर्ती ने अजितनाथ प्रभु से पूछा, **''हे प्रभो ! इस जगत् में सभी जीव अपने ही शुभ-अशुभ कर्म के अनुसार सुख-दुःख का अनुभव करते हैं । मेरे इन पुत्रों ने ऐसा कौनसा अपराध किया, जिसके फल-स्वरूप उन्हें एक साथ मौत के मुँह में जाना पड़ा ।''**

सगरचक्री के इस प्रश्न को सुनकर अजितनाथ प्रभु ने कहा, **''भाग्यशाली ! इस जगत् में सभी जीव अपने ही कर्म के अनुसार सुख-दुःख का अनुभव करते हैं । जो आत्मा कर्म का बंध करती है, उसी आत्मा को कर्म की सजा भुगतनी पड़ती है । तुम्हारे इन पुत्रों ने सामुदायिक पापकर्म का बंध किया था ।''**

''तुम्हारे ये 60000 पुत्र कुछ भवों पूर्व चोरी व लूट-पाट का काम करते थे । एक छ'री पालित संघ उन लुटेरों की पल्ली के पास से जा रहा था । लोभ में अंधे बने उन भीलों ने उस संघ को लूटने का निश्चय किया ।

''भीलों के इस संकल्प को देख किसी भद्रिक भील कुंभार ने उनसे कहा, **''तुम्हारे इस विचार को धिक्कार हो । विपुल धनसामग्री अपने पास होते हुए भी तीर्थयात्रा के लिए प्रयाणरत संघ को लूटना किसी तरह उचित नहीं**

है । ये यात्रिक तो अपने धन का उत्तम क्षेत्र में वपन करनेवाले हैं ।''

''एक ओर पूर्व के पापोदय के कारण नीच कुल में हमारा जन्म हुआ है, फिर इस प्रकार का पापाचरण करेंगे तो भविष्य में हमारी क्या गति होगी ?'' इस प्रकार अच्छी सलाह देने पर भी कुंभार की उस सलाह को किसी ने स्वीकार नहीं किया, बल्कि अच्छी सलाह देनेवाले उस कुंभार को ही उन भीलों ने बाहर निकाल दिया ।

''उसके बाद उन सभी भीलों ने मिलकर उस संघ को बुरी तरह से लूटा ।

''इधर भद्दिलपुर के राजा को ज्योंही संघ के लुटने के समाचार मिले तो उसके गुस्से का पार न रहा । विराट् सैन्य के साथ आकर राजा ने भीलों की पल्ली को चारों ओर से घेर लिया । उन भीलों को कठोर सजा देने की भावना से उस राजा ने उनकी पल्ली में चारों ओर आग लगवा दी ।

''आग से बच निकलने का अन्य कोई उपाय नहीं था, अत: वे सभी भील उस आग में जलने लगे । उन्हें अपनी भूल समझ में आई, परंतु अब क्या हो सकता था ।

''करुण मौत से मरकर वे सभी भील नरक में नारक के रूप में पैदा हुए ।

''नरक में से निकलकर वे सभी समुद्र में मत्स्य बने । मच्छीमारों ने उन्हें जाल में पकड़कर मौत की सजा दी । वहाँ से मरकर कर्णशृगाली (जानवर) बने ।

''वहाँ से अनेक भवों में भटककर शिकार के शौकीन, ऐसे भील बने ।

''एक बार वे सभी भील शिकार के लिए जंगल में जा रहे थे तभी उन्होंने एक प्रशांत मुखाकृतिवाले महात्मा को देखा । महात्मा को देखने से उन्हें शुभ भाव उत्पन्न हुआ ।

''उनकी योग्यता देख मुनि ने उन्हें योग्य धर्मोपदेश दिया । उनकी विशेष योग्यता देख मुनि ने उसी नगर में चातुर्मास किया ।

''पहले मास के उपदेश को सुनकर उन सभी भीलों ने अपने जीवन में से 7 महाव्यसनों को तिलांजलि दे दी ।

''दूसरे मास के अंत में अनंतकाय का त्याग, तीसरे मास के अंत में रात्रिभोजन का त्याग व चौथे मास के अंत में चारों प्रकार के आहार का त्याग

कर उन्होंने अनशन व्रत स्वीकार किया। बिजली गिरने से उन सभी की मृत्यु हुई और वे सब तुम्हारे पुत्रों के रूप में पैदा हुए।

``जिस कुंभार ने उस संघ को लूटने में सहमति नहीं दी थी वह उसी भव में राजा बना और उत्तरोत्तर उत्तम भवों को प्राप्त करता हुआ, इस भव में जह्नुकुमार का पुत्र भगीरथ बना।

``संघ की अवज्ञा, आशातना के दुष्परिणाम को जान संघ की आशातना से अवश्य बचना चाहिए।''

अपने पितामह सगर चक्रवर्ती की आज्ञानुसार गंगानदी के जलप्रवाह को पूर्व महासागर में प्रवाहित कर भगीरथ अपने पितामह के सामने उपस्थित हो गया।

अपने पौत्र भगीरथ के अद्भुत पराक्रम की सगर चक्रवर्ती ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसके बाद चक्रवर्ती ने कहा, **``तुम उम्र से बाल हो, फिर भी बुद्धि और पराक्रम से तो तुम प्रौढ़ ही हो। अब तुम मेरे इस राज्य के भार को ग्रहण करो, ताकि मैं इस संसार-सागर से पार पहुँच सकूँ।''**

पितामह के इन वचनों को सुनकर भगीरथ ने कहा, **``दादाजी! आप संसार-सागर से पार उतरने हेतु दीक्षा लेने के लिए समुत्सुक बने हो तो मैं भी इस संसार से पार उतरना चाहता हूँ, अतः मैं भी आपके साथ दीक्षा अंगीकार करूंगा।''**

पौत्र की ऐसी भावना देख चक्रवर्ती ने कहा, **``अपने पूर्वजों की परंपरा के अनुसार तुम भी दीक्षा लेना चाहते हो, यह योग्य ही है, परंतु तुम्हारे लिए यह समय उचित नहीं है। भविष्य में तुम्हारा पुत्र राज्य के भार को वहन करने में समर्थ बन जाय, तब राज्य का भार उसे सौंपकर तुम भी अवश्य दीक्षा ले सकोगे।''**

राज्य की लेश भी इच्छा नहीं होते हुए भी पितामह की आज्ञा को शिरोधार्य कर **भगीरथ** ने राज्य को स्वीकार किया। `सगर चक्रवर्ती' ने खूब उत्साह के साथ **भगीरथ** का राज्याभिषेक किया।

एक शुभ दिन उद्यानपाल ने आकर सगरचक्री को बधाई देते हुए कहा, **``अपने दिव्य प्रकाश से जगत् के मोह अंधकार को दूर करनेवाले आपके**

ज्येष्ठ बंधु अजितनाथ प्रभु बाह्य उद्यान में पधारे हैं ।''

अजितनाथ प्रभु के आगमन को जानकर सगर चक्रवर्ती का हृदय खुशी से झूम उठा । उसने उद्यानपाल को साढ़े बारह करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ प्रदानकर उसके दारिद्र्य को सदा के लिए दूर कर दिया ।

उसके बाद बड़े आडंबर के साथ सगर चक्रवर्ती भी उद्यान में आये ।

समवसरण में बिराजमान प्रभु की तीन प्रदक्षिणा देकर सगर चक्री ने प्रभु की भावपूर्वक स्तुति की । उसके बाद भवसागर से पार उतरने के लिए प्रभु के पास चारित्र धर्म प्रदान करने की प्रार्थना की ।

उसी समय भगीरथ ने खड़े होकर प्रभु से प्रार्थना की, **''हे प्रभो ! आप मेरे पितामह को दीक्षा प्रदान करें, उसके पूर्व मैं उनकी भागवती दीक्षा का महोत्सव करना चाहता हूँ, अत: तब तक आप यहीं रुकने की कृपा करें ।''**

यद्यपि सगर चक्रवर्ती तत्काल दीक्षा के लिए खूब उत्सुक थे, परंतु पौत्र के विशेष आग्रह को देख वे पुन: नगर में आए ।

जिस प्रकार इन्द्र ने प्रभु का दीक्षा अभिषेक किया था, उसी प्रकार भगीरथ ने अपने पितामह का दीक्षाभिषेक किया ।

अभिषेक के बाद गोशीर्ष चंदन से राजा के देह का विलेपन किया । फिर सगरचक्री ने दिव्य वस्त्र व अलंकार धारण किये । उसके बाद अनुकंपा दान देकर शिविका में आरूढ़ हुए । भव्य वरघोड़े के साथ क्रमश: आगे बढ़ते हुए वे उद्यान में पधारे ।

तत्पश्चात् उन्होंने प्रभु की तीन प्रदक्षिणा दी । फिर साधुवेष धारण किया । उसके बाद आजीवन सामायिक व्रत के स्वीकार के साथ चार महाव्रत स्वीकार किये । सगर चक्री की भागवती दीक्षा के बाद अजितनाथ प्रभु ने सभी को आत्मकल्याणकर हितशिक्षा प्रदान की ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा । रत्नत्रयी की आराधना-साधना में लीन बने सगर मुनि द्वादशांगी के ज्ञाता बने । इस प्रकार ज्ञान-ध्यान की आराधना-साधना करते हुए सगर मुनि एक शुभ दिन क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए । समस्त घातिकर्मों का क्षयकर वे केवली बन गए । अपने दीर्घ आयुष्य को पूर्णकर एक दिन अघातिकर्मों का भी क्षयकर वे शाश्वत अजरामर मोक्षपद के भोक्ता बन गए ।

3. मघवा चक्रवर्ती

इसी भरत क्षेत्र में श्रावस्ती नगरी में समुद्रविजय राजा की रानी भद्रादेवी ने एकदा रात्रि में चौदह महास्वप्न देखे, फलतः उसकी कुक्षि से मघवा नामक चक्रवर्ती का जन्म हुआ। यौवन में पदार्पण करते ही पिता ने उसे राज्य सौंपा, क्रमशः षट्खण्ड साध कर वह चक्रवर्ती बना। चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त करने के बाद मघवा चक्रवर्ती ने सैकड़ों जिन-मंदिरों का निर्माण करवा कर अपने सम्यग्दर्शन को निर्मल बनाया। चिरकाल तक राज्य सुखानुभव करते हुए एक दिन मघवा चक्रवर्ती को संसार से विरक्ति हो गई। मन में चिन्तन की धारा फूट निकली—'मनोवांछित रमणियाँ, विनयी पुत्र, मनोज्ञ कामभोग, प्रचुर लक्ष्मी, निरामय शरीर और दीर्घ जीवन, ये सब संसार प्रतिबन्ध हेतुभूत जितने भी रमणीय पदार्थ हैं, वे सब अस्थिर हैं, स्वप्नवत् अदृश्य हो जाने वाले हैं, क्षण-भंगुर हैं, निकृष्ट हैं, धर्म ही एकमात्र श्रेष्ठ, पवित्र और स्थायी है, वही भवान्तर में साथ आने वाला है। अतः मुझे धर्म-कार्यों में ही उद्यम करना चाहिए।' यों विचार करके अपने पुत्र को राज्य सौंप कर तृतीय चक्रवर्ती मघवा प्रव्रजित हुए।

उनका आयुष्य 5 लाख वर्ष का था। 3,90,000 वर्ष तक चक्रवर्ती की ऋद्धि का भोगकर, अंत में 50,000 वर्ष तक भागवती दीक्षा का पालनकर अत्यंत समाधि के साथ अपने देह का त्याग कर तीसरे देवलोक में पैदा हुए। देवायु को पूर्णकर मानव भव प्राप्त कर अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

4. सनत्कुमार चक्रवर्ती

हस्तिनापुर नगर में अश्वसेन नाम के राजा राज्य करते थे। एक बार उनकी महारानी सहदेवी ने रात्रि में चौदह महास्वप्न देखे ! रानी ने महाराजा को स्वप्नदर्शन की बात कही। राजा ने स्वप्नलक्षण पाठकों से स्वप्नों का अर्थ पूछा।

स्वप्नलक्षण पाठकों ने कहा, `महारानी ने ये स्वप्न थोड़े धुँधले देखे हैं, इसके फलस्वरूप महारानी एक ऐसे पुत्ररत्न को जन्म देगी, जो भविष्य में छह खंड का विजेता चक्रवर्ती बनेगा।

इस फलादेश को जानकर महारानी खुश हो गई ! गर्भकाल पूर्ण होने पर एक शुभ दिन महारानी ने अत्यंत ही तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया।

राजा-रानी ने उस बालक का **'सनत्कुमार'** नाम रखा।

दूज के चाँद की भाँति सनत्कुमार बल-बुद्धि और शरीर से बढ़ने लगा।

एक दिन सनत्कुमार घोड़े पर सवार होकर वनभ्रमण के लिए निकला हुआ था। विपरीत शिक्षण के कारण वह घोड़ा राजकुमार को भयंकर जंगल में ले गया।

आदमी कहीं भी चला जाये, परंतु उसकी छाया की तरह उसका पुण्य भी साथ में ही चलता है।

ठीक एक वर्ष के बाद मित्र महेन्द्रसिंह को सनत्कुमार का पता चला। अनेक स्त्रियों के साथ पाणिग्रहण कर सनत्कुमार अपने मित्र के साथ हस्तिनापुर लौट आया। योग्यता देख पिता ने पुत्र को राजगद्दी सौंप दी और स्वयं ने दीक्षा अंगीकार कर ली।

अनेक राज्यों पर विजयश्री प्राप्त करते हुए सनत्कुमार छह खंड के अधिपति चक्रवर्ती बने।

सनत्कुमार चक्रवर्ती पूर्व भव में इन्द्र थे, अतः उनके राज्याभिषेक प्रसंग पर इन्द्र महाराजा ने कुबेरदेव को उपस्थित रहने के लिए आज्ञा दी।

इन्द्र की आज्ञा से कुबेरदेव अनेक भेंट-सौगातों के सथ सनत्कुमार के

राज्याभिषेक प्रसंग पर उपस्थित हुआ। सनत्कुमार के अद्‌भुत रूप व लावण्य को देख उसे खूब आश्चर्य हुआ।

एक बार सौधर्म इन्द्र अपने सिंहासन पर बैठे हुए थे। तभी ईशान देवलोक का एक देव वहाँ उपस्थित हुआ। उसके देह की कांति के प्रभाव से सभी देवों की कांति फीकी दिखाई देने लगी।

किसी देव ने सौधर्म इन्द्र को पूछा, `इस देव की इतनी श्रेष्ठ देहप्रभा का क्या कारण है ?'

इन्द्र ने कहा, `इस देव ने अपने पूर्व भव में वर्धमान तप किया था, उस तप के प्रभाव से उसे ऐसा अद्‌भुत रूप मिला है।'

देव ने पुनः पूछा `क्या ऐसा रूप अन्य किसी को मिला है ?'

सौधर्म इन्द्र ने कहा, `हस्तिनापुर में कुरुवंश में सनत्कुमार चक्रवर्ती है, उसका ऐसा ही अद्‌भुत रूप है।'

इन्द्र के वचन पर अश्रद्धा करते हुए विजय व वैजयंत देव सनत्कुमार चक्रवर्ती के रूपदर्शन के लिए ब्राह्मण का रूप कर हस्तिनापुर आए।

आत्म-कल्याण की लगन

राजमार्ग से आगे बढ़ते हुए वे दोनों ब्राह्मण चक्रवर्ती के महल में पहुँच गए। उस समय चक्रवर्ती सिर्फ अधोवस्त्र धारण कर स्नानागार में स्नान कर रहे थे।

ब्राह्मण वेष में रहे दोनों देवों ने चक्रवर्ती के अद्‌भुत रूप-सौंदर्य को देखा और वे दाँतों तले अंगुली दबाने लगे।

अचानक उसी समय चक्रवर्ती की नजर उन दोनों पर पड़ी। चक्रवर्ती ने उन्हें पूछा, `अरे ! विप्रो ! अचानक कैसे आना हुआ ?'

ब्राह्मण वेष में रहे उन देवों ने कहा, `हमने दूर-सुदूर क्षेत्रों में आपके रूप-सौंदर्य की कीर्ति सुनी...और हमारे दिल में भी आपके रूप-दर्शन की इच्छा हो गई, बस, उस इच्छा को हम दबा न सके...इसीलिए अभी आपके सामने उपस्थित हुए हैं।'

ब्राह्मणों की यह बात सुनकर अभिमान में आए सनत्कुमार ने कहा, `अरे ! ब्राह्मणो ! क्या अभी रूप-दर्शन की वेला है ? रूप दर्शन करना हो तो

राजसभा में आना । अभी तो मेरे शरीर पर किसी प्रकार के वस्त्र भी नहीं हैं । स्नान से निवृत्त होकर जब मैं वस्त्र और अलंकारों से सुसज्ज होकर राजसभा में उपस्थित होऊँ...तब मेरे रूप-दर्शन की अपनी इच्छा पूर्ण करना ।

चक्रवर्ती के इस संदेश को सुनकर वे दोनों ब्राह्मण उस स्थान से चले गये ।

कुछ ही देर के बाद चक्रवर्ती स्नान से निवृत्त होकर सुंदर वस्त्र व रत्नजड़ित अलंकारों से सुसज्ज होकर बड़े ही आडंबर के साथ राजसभा में आ पहुँचा । रत्नजड़ित स्वर्ण के सिंहासन पर चक्रवर्ती ने अपना आसन जमाया । सारी सभा राजसभा की कार्यवाही के शुभारंभ की प्रतीक्षा करने लगी । इसी बीच उन दो ब्राह्मणों ने भी राजसभा में प्रवेश किया ।

परन्तु यह क्या ! राजा के मुख मंडल की ओर टकटकी लगा कर देखने के बजाय उन दोनों ब्राह्मणों ने अपना मुख मोड़ लिया । चक्रवर्ती ने उन दोनों ब्राह्मणों की ओर देखा और उनके आश्चर्य का पार न रहा । अरे ! यह क्या ? मेरे रूप-दर्शन के लिए आए ब्राह्मण मेरे सामने देखने के लिए तैयार नहीं हैं । आखिर बात क्या है ? अचरज में डूबे चक्रवर्ती ने आखिर पूछ ही लिया, `अरे ब्राह्मणो ! तुम मेरे रूप-दर्शन के लिए स्नानागार में आ गए थे...तो अब देखो मेरा रूप । अभी तुम लोगों ने अपना मुँह क्यों मोड़ लिया है ?'

चक्रवर्ती की यह बात सुनकर उन दोनों ब्राह्मणों ने कहा, `ओ चक्रवर्ती ! हम जो देखने के लिए आए थे, वह तो नष्ट हो चुका है अब देखने योग्य कुछ भी बाकी नहीं रहा है ।'

`अरे ब्राह्मणो ! तुम यह कैसी विचित्र बात कर रहे हो ?'

`राजन् ! आपको हमारी बात पर विश्वास नहीं हो तो आप पान-दानी में थूक कर देख लीजिए...आपके शरीर में कीड़े पैदा हो चुके हैं । आपकी काया रोगों का शिकार बनती जा रही है ।'

ब्राह्मणों के मुख से यह बात सुनकर चक्रवर्ती ने पान-दानी में थूका और सचमुच ही उसे पान-दानी में कीड़े नजर आए । बस, उन कीड़ों को देखते ही उसकी विचारधारा बदल गई । `ओहो ! कैसा है यह शरीर ! इतना शीघ्र परिवर्तनशील !! कुछ समय पूर्व तो इसका अद्भुत सौंदर्य था...अब

वह सौंदर्य समाप्त हो गया ! अहो ! ज्ञानी महापुरुषों का वचन है **'इस शरीर पर भरोसा करना योग्य नहीं है। यह कभी भी धोखा दे सकता है...यह कभी भी अपनी दुष्टता का प्रदर्शन कर सकता है।'** बस, अब मुझे इस शरीर के भरोसे नहीं रहना है। जितना शक्य हो उतना इस शरीर का सदुपयोग कर मुझे अपना आत्म-हित साध लेना है।' इस प्रकार विचार कर शीघ्र ही सनत्कुमार चक्रवर्ती चारित्र धर्म को स्वीकार करने के लिए सुसज्ज बन गए। उसी समय चक्रवर्ती का वेष उतार दिया और चारित्र धर्म को स्वीकार कर लिया।

सनत्कुमार चक्री मिटकर अणगार बन गए। आत्म-साधना के लिए वे जंगल की ओर आगे बढ़े। अचानक ही सनत्कुमार चक्रवर्ती के संसार का त्याग कर देने के कारण उनका अंत:पुर करुण विलाप करने लगा और उन्हें लौटने के लिए आ जी-जी भरी प्रार्थना करने लगा...परन्तु ममत्व के बंधन को तोड़ डालने वाले सनत्कुमार महामुनि के दिल पर उस करुण-रुदन का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। आखिर छह मास तक पीछे-पीछे घूमने पर भी महामुनि जब महल में लौटने के लिए तैयार नहीं हुए तब अंत में थक कर वह सारा अंत:पुर महल में लौट आया।

सनत्कुमार महामुनि आत्मा की साधना में मस्त बन गए। यद्यपि उनकी काया में भयंकर रोग उत्पन्न हो चुके थे, परन्तु वे काया के प्रति बेपरवाह थे। काया की माया-ममता से वे सर्वथा मुक्त बन चुके थे। ममता का त्याग कर वे समता की साधना में तल्लीन थे। काया की चिकित्सा के बजाय वे आत्मा को लगे कर्मरोग को निर्मूल करने में प्रयत्नशील बने हुए थे। अब उनके मन में देह से आत्मा की अधिक कीमत थी।

इस प्रकार वर्षों तक समतापूर्वक कष्टों को सहन करने के फलस्वरूप उनकी अंतरात्मा में अनेक प्रकार की लब्धियाँ पैदा हुईं...परन्तु उन लब्धियों के प्रति भी वे पूर्णतया अनासक्त थे।

पुन: एक शुभ दिन सौधर्म इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान के बल से सनत्कुमार महामुनि को देखा और उनकी अप्रतिम सहनशीलता को देखकर सौधर्मसभा में महामुनि की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे।

पुन: वे दोनों देव महामुनि के सत्त्व की परीक्षा करने के लिए वैद्य के

रूप में आए और वंदन करके बोले, `मुनिवर ! आपकी काया रोगों से ग्रस्त लगती है, अतः हमें सेवा का मौका दें ।'

महामुनि ने कहा, `महानुभाव ! मुझे दो तरह के रोग हैं–कुछ रोग काया को लगे हैं...कुछ रोग आत्मा को लगे हैं। काया के रोगों की मुझे परवाह नहीं है। मुझे आत्मा के रोग मिटाने हैं ।' इतना कहकर मुनिवर ने अपने मुँह में से थूक निकालकर उसे अपने हाथ पर लगाया। जिस भाग पर थूक लगाया था, वह भाग कंचनवर्णी हो गया ।

महामुनि ने कहा, काया के रोग तो मैं भी मिटा सकता हूँ, आत्मा के रोग मिटा सकते हो तो तुम जरूर मेरी चिकित्सा कर सकोगे ।

महामुनि के उन वचनों को सुनकर उन वैद्यों ने हाथ जोड़ लिये और बोले, `भगवंत ! आत्म-रोग को मिटाने की ताकत तो हमारे में नहीं है ।'

`तो काया के रोगों की मुझे परवाह नहीं है ।' रोगों की भयंकर वेदना में भी हँसते-हँसते उस वेदना को सहन करने वाले मुनि के चरणों में वैद्य के वेष में आए वे देव नतमस्तक हो गए ।

सनत्कुमार महामुनि ने 700 वर्षों तक उस रोग परिषह को समतापूर्वक सहन किया ।

अंत में सम्मेतशिखर तीर्थ पर अत्यंत ही समाधिपूर्वक संलेखना कर तीसरे देवलोक में देव के रूप में पैदा हुए ।

5. शांतिनाथ-चक्रवर्ती

इसी जंबुद्वीप के पूर्व महाविदेह में **पुष्कलावती** विजय में **पुण्डरीकिणी** नाम की एक नगरी है । उस नगरी में **धनरथ** राजा, जो भविष्य में तीर्थंकर होने वाले थे, राज्य करते थे । उन राजा के **प्रीतिमती** और **मनोरमा** नाम की दो महारानियाँ थीं ।

एक दिन ग्रैवेयक देवलोक में रहे **वज्रायुध** की आत्मा का देव-आयुष्य पूर्ण हो गया और प्रीतिमती महादेवी की कुक्षि में उनका अवतरण हुआ । उस समय गर्जते-बरसते मेघ का स्वप्न देखा । रानी ने स्वप्न की बात अपने पति को कही ।

राजा ने कहा, 'तुम मेघ के समान पृथ्वी के संताप को हरनेवाले पुत्ररत्न को जन्म दोगी ।' यह सुनकर महारानी खुश हो गई ।

एक शुभ दिन मनोरमा महारानी भी गर्भवती बनी, उसकी कुक्षि में देवलोक में से च्यवकर सहस्त्रायुध की आत्मा का अवतरण हुआ । उस समय महारानी ने स्वप्न में 'रथ' देखा ।

गर्भकाल व्यतीत होने पर दोनों महारानियों ने अत्यंत तेजस्वी एक-एक पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

प्रीतिमती के पुत्र का नाम **मेघरथ** और मनोरमा के पुत्र का नाम **दृढ़रथ** रखा गया ।

बलदेव और वासुदेव की भाँति परस्पर अत्यंत ही प्रेमभाव को धारण करने वाले मेघरथ और दृढ़रथ धीरे-धीरे बड़े होने लगे । वे सभी तरह की कलाओं में निपुण बने । क्रमशः उन्होंने युवावस्था में प्रवेश किया ।

एक दिन धनरथ राजा अपनी राज-सभा में बैठे हुए थे, तभी सुमंदिरपुर के राजा निहतशत्रु के मंत्री ने राजसभा में प्रवेश किया । महाराजा को प्रणाम आदि कर उसने अपने योग्य आसन ग्रहण किया ।

तत्पश्चात् उस मंत्री ने महाराजा को निवेदन करते हुए कहा, 'हमारे महाराजा आपके साथ मैत्री के संबंध को और दृढ़ करना चाहते हैं । हमारे

महाराजा अपनी तीन पुत्रियों का पाणिग्रहण आपके दोनों राजपुत्रों के साथ करना चाहते हैं ।'

मंत्री की यह बात सुनकर महाराजा ने भी अपनी सहमति देते हुए कहा कि इस संबंध से हमारा स्नेह और दृढ़ बनेगा ।

उसी समय मंत्री की बात को स्वीकार कर राजा ने कुशल ज्योतिषी को बुलवाकर लग्न का शुभदिन भी निश्चित कर दिया ।

एक शुभदिन अपने विशाल परिवार के साथ मेघरथ और दृढ़रथ ने सुमंदिरपुर नगर की ओर प्रयाण प्रारंभ कर दिया । इस प्रकार क्रमशः आगे बढ़ते हुए वे सुरेन्द्रदत्त राजा के राज्य की सीमा पर से प्रसार होने लगे ।

उस समय सुरेन्द्रदत्त के दूत ने आकर मेघरथ को निवेदन करते हुए कहा, 'हमारे स्वामी की आज्ञा है कि आप हमारे राज्य की सीमा पर से न जाएँ ।'

दूत की यह बात सुनकर मेघरथ ने हँसते हुए जवाब दिया, 'हमारे लिए यही सरल मार्ग है अतः हम इस मार्ग को क्यों छोड़ेंगे ? हम इसी मार्ग से जाएंगे, फिर भी तुम्हारा स्वामी अपनी शक्ति बताना चाहता हो तो ध्यान रहे, हम भी अपनी शक्ति-प्रदर्शन के लिए तैयार हैं ।'

दूत ने जाकर जब ये बातें सुरेन्द्रदत्त को कहीं तो सुरेन्द्रदत्त मेघरथ के साथ लड़ने के लिए तैयार हो गया । वह अपने सैन्य को लेकर वहाँ आ गया । दोनों सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ । आखिर मेघरथ ने सुरेन्द्रदत्त को और दृढ़रथ ने युवराज को हराकर बंधनग्रस्त कर दिया । तत्पश्चात् वे वहाँ से आगे बढ़ गए । क्रमशः आगे बढ़ते हुए वे सुमंदिरपुर पहुँचे । वहाँ खूब धूमधाम के साथ मेघरथ का विवाह प्रियमित्रा व मनोरमा के साथ तथा दृढ़रथ का विवाह सुमति के साथ हो गया ।

सुमंदिरपुर से लौटते समय मेघरथ और दृढ़रथ, सुरेन्द्रदत्त के नगर में आए । उन दोनों ने सुरेन्द्रदत्त को वापस बंधन-मुक्त कर कहा, 'तुम्हारे राज्य का हमें लोभ नहीं है ।' इतना कहकर वे आगे बढ़ते हुए अपने नगर में आ गए ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

मेघरथ की रानी प्रियमित्रा और मनोरमा ने नंदिषेण और मेघसेन नामक दो पुत्रों को एवं दृढ़रथ की पत्नी सुमति ने रथसेन नाम के पुत्र को जन्म दिया । धीरे-धीरे वे सभी राजकुमार बड़े होने लगे ।

एक दिन धनरथ राजा अपने पुत्र-पौत्र आदि विशाल परिवार के साथ में राजसभा में बैठे हुए थे, तभी एक गणिका ने आकर कहा, `महाराजा ! मेरे पास में एक मुर्गा है, जो किसी दूसरे मुर्गे से हारनेवाला नहीं है, यदि कोई इस मुर्गे को हरा दे तो मैं उसे एक लाख सुवर्ण मुद्राएँ देने के लिए तैयार हूँ और साथ में यह भी शर्त है कि जिसका मुर्गा हार जाएगा, उसे एक लाख सुवर्ण मुद्राएँ देनी होंगी ।'

यह शर्त सुनकर मनोरमा रानी ने अपनी दासी के पास अपना मुर्गा मंगवा दिया और हार-जीत के प्रसंग में एक लाख सोना मोहर लेने-देने की शर्त भी स्वीकार कर ली ।

दोनों मुर्गे मैदान में आमने-सामने आ गए । काफी देर तक उनकी लड़ाई चली, परंतु हार-जीत का कोई निर्णय ही नहीं हो पा रहा था ।

उसी समय तीन ज्ञान के धारक धनरथ ने अपने पुत्र मेघरथ को कहा, `बेटा ! ये दोनों मुर्गे चाहे जितनी देर तक लड़ते रहें, परंतु इनमें से किसी की भी हार जीत होनेवाली नहीं है ।

मेघरथ ने पूछा, `ऐसा क्यों ?'

धनरथ ने कहा, इसके रहस्य को जानने के लिए तुम्हें इनके पूर्व भवों को जानना होगा, जो मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।

`इसी जंबुद्वीप के भरत क्षेत्र में रत्नपुर नगर में धनदत्त और वसुदत्त नाम के दो वणिक् रहते थे । वे दोनों धन के खूब लोभी थे । बैलगाड़ी में सामान लादकर वे एक गाँव से दूसरे गाँव जाते थे । वे दोनों बैलों पर भी खूब अत्याचार करते थे । उन्हें भूखे-प्यासे रखते थे ।

व्यापार में भी मिलावट, खोटे माप-तौल आदि कर लोगों को ठगते रहते थे ।

एक बार उन दोनों के बीच मतभेद हो गया । वे परस्पर लड़ने लगे । आखिर दुर्ध्यान में मरकर वे दोनों सुवर्णकूला नदी के तट पर हाथी के रूप

में पैदा हुए। वहाँ पर भी परस्पर लड़कर मरकर अयोध्या में पाड़े के रूप में पैदा हुए। उन दोनों को अलग-अलग राजकुमारों ने खरीदा। परस्पर खूब लड़े और मरकर भेड़ के रूप में पैदा हुए। वहाँ पर भी खूब लड़े। वहाँ से मरकर वे दोनों मुर्गे के रूप में पैदा हुए हैं। पूर्वजन्म के युद्ध के कुसंस्कारों के कारण इनमें से एक भी हारनेवाला नहीं है।'

उसी समय निर्मल अवधिज्ञान के धारक मेघरथ ने कहा, 'पिताजी ! आपने जो कुछ कहा, वह यथार्थ है, ये दोनों मुर्गे परस्पर ईर्ष्या तो रखते ही हैं, साथ में इन दोनों पर दो विद्याधरों की भी छाया है, इसका कारण मैं सुनाता हूँ। इतना कहकर मेघरथ उन दो विद्याधरों के पूर्व भवों की घटना सुनाते हुए बोले, 'इसी भरतक्षेत्र में **सुवर्णाभ** नगर में **गरुड़वेग** नाम का विद्याधर राजा राज्य करता था। उस राजा के **चंद्रतिलक** और **सूर्यतिलक** नाम के दो बेटे थे। एक दिन वे दोनों बंधु आकाशगामिनी विद्या के बल से शाश्वत जिन प्रतिमाओं को वंदन करने के लिए मेरु पर्वत पर जा रहे थे। मेरु पर्वत पर उन्होंने सागर मुनि के दर्शन किए। उन्होंने मुनि को अपने पूर्व भव का वृत्तांत पूछा, तब मुनि ने उनके पूर्व भव का वृत्तांत सुनाते हुए कहा–

'धातकी खंड के ऐरावत क्षेत्र में **वज्रपुर** नगर में **अभयघोष** राजा राज्य करता था, उसकी रानी का नाम **सुवर्णतिलका** था। उस राजा के **जय-विजय** नाम के दो पुत्र थे।

शंख राजा की पुत्री **पृथ्वीसेना** का विवाह **अभयघोष** राजा के साथ हुआ।

एक बार वसंत ऋतु में **अभयघोष** राजा अपनी **पृथ्वीसेना** रानी के साथ क्रीड़ा करने के लिए उद्यान में गया। वहाँ उसने **दंतदमन** मुनि को देखा। उन्होंने भावपूर्वक मुनि की धर्मदेशना का श्रवण किया। मुनि की वैराग्यमय धर्मदेशना के फलस्वरूप पृथ्वीसेना ने वहीं पर भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली।

उसके बाद अभयघोष राजा अपने महल में आया। एक बार अनंत नाम के तीर्थंकर भिक्षा के लिए अभयघोष महाराजा के महल में पधारे। महाराजा ने भक्तिपूर्वक प्रभु को सुपात्रदान दिया। उसी समय पंच दिव्य प्रगट हुए। देवताओं ने धन की वृष्टि की, सुगंधित जल की वृष्टि की व पुष्पों की वृष्टि की। आकाश में देवदुंदुभि के नाद के साथ 'अहो दानं, अहो दानं' की घोषणा भी हुई।

समय व्यतीत होने पर अनंत तीर्थंकर प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तीर्थंकर प्रभु की धर्मदेशना के श्रवण के फलस्वरूप अभयघोष राजा ने अपने दोनों पुत्रों के साथ भागवती दीक्षा अंगीकार की।

बीस स्थानक की आराधना के फलस्वरूप अभयघोष मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित किया।

अभयघोष राजर्षि तथा उनके दोनों पुत्र मुनि कालधर्म प्राप्तकर अच्युत देवलोक में देव के रूप में पैदा हुए। अच्युत देवलोक में से च्यवकर अभयघोष की आत्मा हेमांगद राजा के पुत्र धनरथ के रूप में पैदा हुई और जय-विजय की आत्मा विद्याधर के रूप में तुम पैदा हुए हो।'

'हे पिताजी ! मुनि ने जब चन्द्रतिलक और सूर्यतिलक को अपने पूर्व भव की कथा सुनाई तो वे आपके दर्शन के लिए उत्सुक होकर यहाँ आए हैं। कुछ देर तक वे विद्याधर उन मुर्गों की लड़ाई को देखते रहे, उसके बाद अपनी विद्या के प्रभाव से उन दोनों ने इन मुर्गों के शरीर में प्रवेश किया है।'

ज्योंही मेघरथ ने ये सारी बातें बतलाईं, त्योंही वे विद्याधर मुर्गे के शरीर में से बाहर आ गए और धनरथ राजा के चरणों में गिर पड़े। इसके बाद वे अपने नगर में चले गए। अंत में उन दोनों ने दीक्षा अंगीकार कर सर्व कर्मों का क्षयकर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त किया।

इधर अपने पूर्व-भवों के श्रवण से उन दोनों मुर्गों को भी प्रतिबोध हुआ। वे दोनों अपने पाप का तीव्र पश्चाताप करने लगे।

वे मुर्गे अपनी भाषा में बोले, 'अब हमारा क्या होगा ?'

तब राजा ने उन्हें अहिंसा धर्म का उपदेश दिया, उन दोनों ने सच्चे दिल से अहिंसा धर्म को स्वीकार किया।

उस अहिंसा धर्म के पालन के फलस्वरूप अनशन स्वीकार कर वे दोनों मरकर ताम्रचूल और सुवर्णचूल नाम के देव हुए।

अपने अवधिज्ञान के द्वारा मेघरथ राजा को अपना उपकारी समझकर वे दोनों देव मेघरथ राजा के पास आए और बोले, 'वणिक्, हाथी, पाड़ा, भेड़ व मुर्गे के भव हमने अपने कर्मानुसार किए। मुर्गे के भव में कीड़े-भक्षी के रूप में हमारा जीवन था, उस भव में आप हमें नहीं मिले होते तो हमारी कैसी

भयंकर हालत होती ? आपके ही प्रभाव से हमें देव-भव की प्राप्ति हुई है। आपके इस ऋण की मुक्ति के लिए हम आपको विश्वदर्शन कराना चाहते हैं।

यद्यपि अवधिज्ञानी ऐसे मेघरथ के लिए सब कुछ प्रत्यक्ष था, परंतु उन देवों की भावना को देख वे देवविमान में आरूढ़ हो गए।

उन देवों ने मेघरथ को मेरुपर्वत, वैताढ्य पर्वत, लवण समुद्र, धातकी खंड, पुष्करार्ध द्वीप, मानुषोत्तर पर्वत आदि स्थान बतलाए।

अवधिज्ञान से प्रत्यक्ष ये सारे पदार्थ मेघरथ राजा को प्रत्यक्ष देखने को मिले।

एक बार नौ लौकांतिक देवताओं ने आकर धनरथ राजा को धर्मतीर्थ प्रवर्तन के लिए विनंति की। राजा ने उन देवों की विनंति स्वीकार करते हुए वार्षिक दान देना प्रारंभ किया। सांवत्सरिक दान देकर उन्होंने जगत् के द्रव्य-दारिद्र्य को दूर किया। तत्पश्चात् भागवती-दीक्षा अंगीकार कर निर्मल संयम की साधना द्वारा घाति कर्मों का क्षय कर वे केवली बने। देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की। धनरथ प्रभु ने धर्मोपदेश देकर चतुर्विध संघ की रचना की।

मेघरथ राजा अपने छोटे बंधु दृढ़रथ के साथ न्याय और नीतिपूर्वक राज्य का पालन कर रहे थे।

एक बार मेघरथ राजा सर्व अलंकार आदि का त्याग कर पौषधशाला में पौषध व्रत ग्रहण कर जिनेश्वर भगवंत के धर्म की चर्चा कर रहे थे। तभी भय के मारे काँपता हुआ एक कबूतर आकर उनकी गोद में बैठ गया।

वह कबूतर मनुष्य की भाषा में बोला, 'मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप मुझे बचाओ ! बचाओ !'

उसी समय मेघरथ राजा ने कहा, 'जब तुम मेरी शरण में आ गए हो तो अब तुम्हें किसी प्रकार का भय रखने की जरूरत नहीं है।'

राजा की यह बात सुनकर वह पक्षी थोड़ा निर्भय हो गया। इसी समय पीछे-पीछे एक बाज पक्षी आकर मनुष्य की भाषा में बोला, 'हे राजन् ! यह मेरा भक्ष्य (आहार) है, अतः आप इसे छोड़ दें।'

बाज पक्षी की यह बात सुनकर राजा ने कहा, ***'शरण में आए शरणार्थी की रक्षा करना यह क्षत्रियों का धर्म है, इसने मेरी शरण स्वीकार की***

है, अतः इसको बचाना मेरा परम कर्त्तव्य है।'

'दूसरों के प्राण लेकर अपने प्राणों का पोषण करना, यह बुद्धिमान के लिए उचित नहीं है। इस पक्षी के भोजन से तुम्हें तो थोड़ी देर के लिए तृप्ति होगी, जब कि इस पक्षी के तो प्राण ही चले जाएंगे, इसका क्या ?

पंचेन्द्रिय प्राणी के वध से और उसका मांस भक्षण करने से आत्मा नरक गति में जाती है और वहाँ भयंकर कष्टों को सहन करती है। दूसरे भोजन से भी क्षुधा तृप्ति हो सकती हो तो फिर मांसाहार क्यों करना ?

प्राणिवध से जो नरकगति प्राप्त होती है, वहाँ एक मात्र भयंकर कष्टों को ही सहन करने का है, अतः प्राणिवध को छोड़ दो और एक मात्र धर्म का आचरण करो जिससे परलोक में भी सुख प्राप्त कर सकोगे।'

मेघरथ राजा का सम्बोधन सुनकर मनुष्य की भाषा में उस बाज पक्षी ने कहा, 'मेरे भय से यह कबूतर आपकी शरण में आया है तो भूख से पीड़ित ऐसा मैं किसकी शरण में जाऊँ ? दयालु व्यक्ति तो सभी पर एक समान करुणावाले होते हैं, अतः यदि आप उस पर दया करना चाहते हो तो मुझ पर भी दया करें। यदि आप इसे बचाते हैं तो आप मुझे भी बचाएँ, क्योंकि भूख के कारण मेरे प्राण चले जाएंगे।'

'जिसका शरीर स्वस्थ हो, उसके लिए धर्म-अधर्म की बातें उचित हैं। धर्म प्रिय होने पर भी भूखा व्यक्ति कौनसा पाप नहीं करता है ? अतः आप धर्म की बात छोड़ दें और मुझे मेरा भक्ष्य अर्पण करें ! एक को बचाना और दूसरे को मारना यह कौन सा धर्म है। मुझे अन्य भोजन से तृप्ति होने वाली नहीं है, क्योंकि मैं हमेशा मांस ही खाता हूँ।'

राजा ने कहा, 'मैं तुझे इस कबूतर के वजन तुल्य अपना ही मांस दे देता हूँ।'

बाज पक्षी ने कहा, 'यह मुझे मंजूर है।'

उसी समय मेघरथ राजा ने एक तराजू मंगाया, उस तराजू के एक पलड़े में उस कबूतर को रखा और दूसरे पलड़े में अपने शरीर में से मांस काटकर रखने लगे।

काफी मांस रखने पर भी वे दोनों पलड़े समान नहीं हुए, बल्कि

कबूतर का पलड़ा नीचे ही रहा । यह स्थिति देख मेघरथ राजा स्वयं उस पलड़े में बैठने के लिए तैयार हो गए ।

एक मात्र एक कबूतर को बचाने के लिए राजा को पलड़े में बैठते देख सभा में हाहाकार मच गया ।

सामंत आदि लोग कहने लगे, `राजन् ! आप यह क्या करने जा रहे हो ? आप इस शरीर से तो समग्र पृथ्वी का पालन करने वाले हो, एक पंखी के लिए इस शरीर का त्याग करना कहाँ तक उचित है ? यह कोई मायावी लगता है, नहीं तो एक कबूतर का इतना वजन कैसे हो सकता है ?'

सामंतजनों के इतना कहने पर भी महाराजा अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा से पीछे नहीं हटे ।

वे सोचने लगे, `इस असार शरीर से यदि कोई परोपकार का कार्य हो सकता हो तो इससे सुंदर और क्या होगा ?'

राजा ज्योंही उस पलड़े में बैठे, त्यों ही कानों में कुंडल आदि सभी आभूषणों को धारण किया हुआ एक देव वहाँ प्रगट हुआ ।

उस देव ने कहा, ***'राजन् ! तुम धन्य हो ! हे वीर शिरोमणि ! तुम्हारा जन्म और जीवन सफल है ! आज ईशान देवलोक में इन्द्र ने आपके जीवदया आदि गुणों की प्रशंसा की थी, परंतु उस प्रशंसा को सहन नहीं कर पाने के कारण आपकी परीक्षा के लिए मैं आया था ।***

आपकी परीक्षा के लिए ही मैंने बाज और कबूतर के शरीर में प्रवेश किया था । इस बाज और कबूतर का पहले से ही वैर था ।

परंतु इस परीक्षा में आपकी ज्वलंत विजय हुई है । मैं अपने अपराध की क्षमा चाहता हूँ । इन्द्र ने आपकी जो प्रशंसा की, उससे भी बढ़कर आपकी गुणसंपदा है ।' इतना कहकर वह देव चला गया ।

इसी बीच किसी ने मेघरथ को पूछा, `इस बाज और कबूतर में परस्पर वैर कैसे हुआ ?'

अपने ज्ञान से उनके पूर्वभव सुनाते हुए मेघरथ ने कहा, `इस जंबुद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में पद्मिनीखंड नाम का नगर था । वहाँ सागरदत्त सेठ रहता था । सेठ की पत्नी का नाम विजयसेना था । उनके धन और नंदन नाम

के दो पुत्र थे। वे धीरे-धीरे बड़े हुए। एक बार वे दोनों भाई व्यापार करने के लिए नागपुर नगर में गए। वहाँ व्यापार करते हुए उन्हें बहुमूल्य रत्न प्राप्त हुआ।

उस रत्न को पाने के लिए वे दोनों भाई परस्पर झगड़ने लगे। उनका झगड़ा चालू रहा। नाव से नदी पार करते समय भी लड़ते रहे। लड़ते-लड़ते वे नदी में गिर पड़े और दुर्ध्यान से मरकर, इस जंगल में बाज व कबूतर हुए हैं।

देव के प्रभाव से मेघरथ राजा का शरीर पुनः पूर्ववत् हो गया था।

किसी ने पूछा, 'इस देव ने आपकी परीक्षा क्यों ली ?'

मेघरथ राजा ने कहा, 'इस भव से पाँचवें भव में मैं अपराजित नाम का बलदेव था, यह दृढ़रथ, अनंतवीर्य नाम का वासुदेव था। प्रतिवासुदेव दमितारि की पुत्री कनकश्री के लिए हमने दमितारि को मार डाला था। वही दमितारि मरकर नारक बना, फिर सोमप्रभ तापस का पुत्र हुआ और फिर बाल तप कर यह देव बना है।

इन्द्र के द्वारा की गई प्रशंसा को नहीं सहने के कारण ही यह मेरी परीक्षा के लिए आया था।

मेघरथ के मुख से अपने पूर्वभव को सुनकर उस बाज पक्षी और कबूतर ने उसी समय अनशन कर लिया। वे दोनों मरकर भवनवासी देव बने। धीरे-धीरे समय बीतने लगा।

एक बार मेघरथ राजा अट्ठम तप करके प्रतिमा में रहे हुए थे। उस समय ईशानेन्द्र ने उनको भावपूर्वक नमस्कार किया।

इन्द्र को अचानक नमस्कार करते देख इंद्राणियों ने पूछा, 'आपने किसको नमस्कार किया है ?'

इन्द्र ने कहा, **'अट्ठम तप कर विशुद्ध ध्यान में मग्न मेघरथ राजा को नमस्कार किया है, जो भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं। उन्हें अपने ध्यान से विचलित करने में देव-देवी या इन्द्र कोई भी सक्षम नहीं है।'**

ईशानेन्द्र की यह बात सुनकर सुरूपा और अतिरूपा देवी को परीक्षा करने का मन हो आया। वे दोनों देवियाँ मेघरथ के पास आईं और अनेक

प्रकार के नृत्य आदि कर राजा को मोहित करने लगीं ।

देवियों के द्वारा किए गए अनुकूल उपसर्गों से मेघरथ लेश भी विचलित नहीं हुए, वे मेरु की तरह अडिग ही रहे ।

आखिर उन देवियों ने राजा से क्षमा मांगी और राजा के गुणों की प्रशंसा करती हुई देवलोक में चली गईं ।

एक शुभ दिन उद्यानपाल ने आकर समाचार देते हुए कहा, `उद्यान में धनरथ प्रभु का आगमन हुआ है ।'

पिता प्रभु के आगमन को सुनकर राजा खुश हो गया । बड़ी धूमधाम के साथ राजा उन्हें वंदन के लिए उद्यान में गया ।

प्रभु की देशना सुनकर वे तुरंत ही दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गए ।

उन्होंने अपने पुत्र को राज्य सौंप दिया और 700 पुत्रों व 4000 अन्य राजाओं के साथ भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

दीक्षा अंगीकार कर मेघरथ मुनि निर्मल संयम धर्म का पालन करने लगे । उन्होंने बीस स्थानक की आराधना की । उनके अन्तर्मन में जगत् के जीव मात्र के कल्याण की श्रेष्ठ भावना पैदा हुई । इस उत्तम भावना के फलस्वरूप उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित किया ।

एक लाख वर्ष तक संयम धर्म का पालन कर अंत में अनशन पूर्वक अपने देह का त्याग कर मेघरथ व दृढ़रथ मुनि सर्वार्थ-सिद्ध विमान में देव के रूप में पैदा हुए । वहाँ उनका 33 सागरोपम का आयुष्य था । सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद शांतिनाथ प्रभु की आत्मा का ग्यारहवाँ भव था ।

बारहवाँ भव-शांतिनाथ तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती

इस भरत क्षेत्र के हस्तिनापुर नगर में विश्वसेन नाम के राजा राज्य करते थे । विश्वसेन राजा की महारानी का नाम अचिरादेवी था ।

एक शुभ दिन सर्वार्थसिद्ध विमान में रही मेघरथ की आत्मा का आयुष्य पूरा हुआ और भादों कृष्णा सप्तमी के दिन भरणी नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर अचिरादेवी की कुक्षि में उनका अवतरण हुआ । उस समय मध्य रात्रि में अर्धनिद्रा अवस्था में रही अचिरा देवी ने हाथी, वृषभ,

सिंह, अभिषेक युक्त लक्ष्मी, पुष्प माला, चंद्र, सूर्य, ध्वजा, पूर्णकुंभ, सरोवर, सागर, विमान, रत्न राशि और निर्धूम अग्नि रूप चौदह महास्वप्न देखे ।

स्वप्न दर्शन के साथ ही महारानी की निद्रा भंग हो गई । उन्होंने उन स्वप्नों की बात विश्वसेन महाराजा को कही ।

विश्वसेन राजा ने कहा, 'प्रिये ! तू ने खूब सुंदर स्वप्न देखे हैं, इन स्वप्नों के फलस्वरूप तू लक्षण युक्त उत्तम पुत्र-रत्न को जन्म देगी ।'

प्रातःकाल होने पर राजा ने स्वप्न-लक्षण-पाठकों को बुलाया । उन स्वप्नपाठकों ने कहा, **'इन उत्तम स्वप्नों के फलस्वरूप आपका पुत्र छह खंड का अधिपति चक्रवर्ती और तीन लोक के लिए पूज्य तीर्थंकर बनेगा ।'**

अचिरा माता अच्छी तरह से गर्भ का पालन-पोषण करने लगी ।

अचिरा माता की कुक्षि में इस पुत्ररत्न के आगमन के पूर्व नगर में महामारी का भयंकर उपद्रव था, जिस कारण कई लोग मर रहे थे, ज्यों ज्यों यह गर्भ बढ़ने लगा, त्यों त्यों यह उपद्रव शांत होने लगा और धीरे धीरे नगर में सर्वत्र शांति छा गई ।

गर्भ के प्रभाव से माँ को अच्छे-अच्छे दोहद उत्पन्न होने लगे ।

नौ माह और छह दिन का गर्भकाल व्यतीत होने पर **जेठ मास की कृष्णा चतुर्दशी** के दिन भरणी नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर अचिरा माता ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

सर्व प्रथम 56 दिक् कुमारिकाओं ने आकर प्रभु के जन्म का सूति कर्म किया । तत्पश्चात् इन्द्र महाराजा का आसन कंपित हुआ । इन्द्र भी प्रभु की माता के पास आए और पाँच रूप करके प्रभु को मेरु पर्वत पर ले गए । जहाँ इन्द्र तथा देवताओं ने प्रभु का भव्यातिभव्य जन्म महोत्सव मनाया ।

तत्पश्चात् प्रातःकाल होने पर प्रियंवदा दासी ने आकर विश्वसेन महाराजा को पुत्रजन्म की बधाई दी । महाराजा ने 12 दिन का भव्य जन्म महोत्सव मनाया ।

प्रभु के गर्भ में आने से नगर में हो रहा महामारी का उपद्रव शांत हो गया था, अतः 12वें दिन प्रभु का नामकरण **'शांतिकुमार'** किया गया ।

समय के साथ-साथ शांतिकुमार की उम्र भी बढ़ने लगी । क्रमशः उन्होंने युवावस्था में प्रवेश किया । पिता ने अनेक रूपवती कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण कराया । 25,000 वर्ष की उम्र होने पर पिता ने उन्हें अपनी राजगद्दी सौंप दी ।

शांतिकुमार के यशोमती आदि अनेक रानियाँ थीं । मेघरथ के भव में दृढ़रथ के साथ एक भाई का संबंध था । दृढ़रथ की आत्मा ने अपना देव आयुष्य पूरा किया और उस आत्मा का यशोमती महारानी की कुक्षि में आगमन हुआ । उस समय रानी ने स्वप्न में चक्र को देखा । गर्भ काल व्यतीत होने पर महारानी ने तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम **'चक्रायुध'** रखा गया ।

धीरे-धीरे चक्रायुध बड़ा होने लगा । युवावस्था प्राप्त होने पर अनेक राजकन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण भी हो गया ।

एक दिन शांतिकुमार की आयुधशाला में सूर्य की कांतिवाला, एक हजार आरों से युक्त, हजार यक्षों से अधिष्ठित चक्ररत्न पैदा हुआ । आरक्षकों ने आकर शांतिकुमार से बात की । शांतिकुमार ने अष्टाह्निक महोत्सव किया । तत्पश्चात् उस चक्ररत्न को साथ में लेकर शांति प्रभु छह खंड को जीतने के लिए निकल पड़े ।

शांति प्रभु के प्रचंड पुण्य के प्रभाव से अल्पकाल में ही वे छह खंड के विजेता बन गए । 12 वर्ष तक शांति प्रभु के चक्रवर्ती पद का महोत्सव मनाया गया । खूब धूमधाम के साथ उन्हें चक्रवर्ती पद पर प्रतिष्ठित किया गया ।

चक्रवर्ती पद की समृद्धि को भोगते हुए 25000 वर्ष बीत गए ।

तत्पश्चात् नौ लौकांतिक देवताओं ने आकर प्रभु को धर्मतीर्थ के प्रवर्तन के लिए विनंति की । प्रभु ने उसी दिन से सांवत्सरिक दान देना प्रारंभ किया । 1 वर्ष पर्यंत दान देकर प्रभु ने जगत् का द्रव्य दारिद्र्य मिटा दिया ।

तत्पश्चात् जेठ कृष्णा चतुर्दशी के शुभ दिन शांतिनाथ प्रभु मोह-माया के समस्त बंधनों को तोड़कर भव्य वरघोड़े के साथ सहस्राम्र वन नाम के उद्यान में आए । वहाँ सभी आभूषणों को उतारकर पंचमुष्टि लोच किया । फिर सिद्धों को नमस्कार कर प्रभु ने आत्म-कल्याणकारी भागवती दीक्षा अंगीकार

की। उस समय 1000 राजाओं ने भी प्रभु के साथ दीक्षा ली। दीक्षा के दिन प्रभु के छट्ठ का तप था। उस समय प्रभु को चौथा मन:पर्यवज्ञान भी उत्पन्न हुआ।

प्रभु एक वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहे। अनुकूल-प्रतिकूल सभी उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करते थे।

पृथ्वीतल पर विहार करते हुए शांतिनाथ प्रभु सहस्त्राम्रवन में पधारे। छट्ठ तप पूर्वक शुक्ल ध्यान में लीन बने प्रभु को पौष सुदी नवमी के दिन केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

चारों निकाय के देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की। प्रभु ने भव-निस्तारिणी धर्मदेशना दी।

उसी समय उद्यानपाल ने आकर चक्रायुध राजा को समाचार दिए कि शांतिनाथ प्रभु को केवलज्ञान पैदा हुआ है। चक्रायुध भी अपने विशाल परिवार के साथ उद्यान में आया।

शांतिनाथ प्रभु ने उन सब के उद्धार के लिए धर्मदेशना दी., जिसे सुनकर चक्रायुध राजा भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गया। चक्रायुध राजा ने अपनी राजगद्दी अपने पुत्र कुरुचंद्र को सौंप दी और 35 राजाओं के साथ प्रभु के चरणों में दीक्षा अंगीकार करली। प्रभु ने उन 36 को गणधर पद पर प्रतिष्ठित किया। उन सभी गणधरों ने द्वादशांगी की रचना की।

एक बार पुन: शांतिनाथ प्रभु पृथ्वीतल पर विहार करते हुए हस्तिनापुर नगर के बाहर उद्यान में पधारे। कुरुचंद्र राजा को ज्योंही प्रभु के आगमन का पता चला वह भी अपने विशाल परिवार के साथ प्रभु को वंदन करने के लिए उपस्थित हो गया।

प्रभु ने वैराग्यमय धर्मदेशना दी। धर्मदेशना के अंत में कुरुचंद्र ने पूछा, 'हे प्रभो ! पूर्व जन्म के किस कर्म के उदय से मुझे राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति हुई है ? किस कर्म के उदय से मुझे प्रतिदिन पाँच दिव्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ? प्रियजनों को देने के लिए वे दिव्य वस्तुएँ रखता हूँ, लेकिन वे वस्तुएँ किसी को दे नहीं पाता हूँ ?'

कुरुचंद्र के इन प्रश्नों को सुनकर उनका समाधान करते हुए प्रभु ने

कहा, `पूर्वभव में किए गए दानधर्म के प्रभाव से तुझे राज्य की प्राप्ति हुई है और प्रतिदिन 5 अमूल्य वस्तुओं की प्राप्ति भी उसी दानधर्म के कारण हो रही है। वे दिव्य वस्तुएँ बहुजनभोग्य होने से तुम अकेले ही उनका उपभोग नहीं कर सकते हो। प्रियजनों का परिचय नहीं होने से उन वस्तुओं को देने की भावना पूरी नहीं हो रही है।

इतनी बात कहकर शांतिनाथ प्रभु ने उसका पूर्वभव बतलाते हुए कहा, `इसी भरत क्षेत्र के कौशल देश में श्रीपुर नाम का नगर था, उसी नगर में सुधन, धनपति, धनद और धनेश्वर नाम के चार मित्र रहते थे। एक बार वे चारों मित्र धन कमाने के लिए रत्नद्वीप की ओर गए। उन चारों ने अपने कार्य के लिए द्रोण नाम का एक नौकर रखा था।

रत्नद्वीप की ओर आगे बढ़ते हुए उनका भाता खूटने लगा। भाता उठाने की जवाबदारी उस द्रोण की थी। मार्ग में आगे बढ़ते हुए उन्हें एकमुनि के दर्शन हुए। चारों मित्रों ने द्रोण को कहा, `भाता भले ही खूटे, परंतु तुम मुनिराज के दान का लाभ अवश्य लेना।'

चारों मित्रों की दान के विषय में सहमति होने से द्रोण ने खूब भावपूर्वक मुनि को दान दिया।

उस दान के प्रभाव से ही वह द्रोण मरकर कुरुचंद्र के रूप में तुम पैदा हुए हो।

हे कुरुचंद्र ! वे सुधन और धनद मरकर वसंतपाल और कामपाल बने हैं तथा धनपति व धनेश्वर मदिरा व केशरा के रूप में पैदा हुए हैं।

प्रभु के मुख से इन बातों को सुनने से कुरुचंद्र सहित उन मित्रों को भी जातिस्मरण ज्ञान पैदा हो गया। अपने पूर्व भव को जानकर कुरुचंद्र की शंका दूर हो गई। उसके बाद प्रभु ने अन्यत्र विहार किया।

1 लाख वर्ष के आयुष्यवाले शांतिनाथ प्रभु ने पृथ्वी तल पर विचरण कर अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध दिया। तत्पश्चात् अपना निर्वाण काल नजदीक में देखकर सम्मेतशैल पर पधारे। वहाँ 900 मुनियों के साथ एक मास का अनशन कर समस्त अघाति कर्मों के बंधन से मुक्त होकर जेठ वदी त्रयोदशी के दिन शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त किया।

6. कुन्थुनाथ चक्रवर्ती एवं 17 वें तीर्थंकर

नाम	: श्री कुंथुनाथ
देश	: कुरुदेश
नगर	: हस्तिनापुर
पिता	: शूर
माता	: श्रीदेवी
लंछन	: बकरा
वर्ण	: सोने जैसा पीला
ऊँचाई	: 35 धनुष
च्यवन कल्याणक	: श्रावण वदि–9
च्यवन नक्षत्र	: कृत्तिका नक्षत्र
गर्भकाल	: नौ माह साढे सात दिन
जन्म कल्याणक	: वैशाख वदि-14
जन्म नक्षत्र	: कृत्तिका
राशि जन्म की	: वृषभ राशि
दीक्षा नगरी	: हस्तिनापुर
दीक्षा स्थान	: सहस्त्राम्रवन
दीक्षा दिन	: वैशाख वदि–5
दीक्षा समय	: दोपहर
दीक्षा शिविका	: विजया
साथ में दीक्षित	: 1000 पुरुष
दीक्षा दिन तप	: दो उपवास बेला
पारणा नगरी	: चक्रपुर
प्रथम भिक्षादाता	: व्याघ्रसिंह
केवलज्ञान नगरी	: हस्तिनापुर
केवलज्ञान भूमि	: सहस्त्राम्रवन
केवलज्ञान	: चैत्र सुदि-3
केवलज्ञान तप	: २ उपवास
केवलज्ञान वृक्ष	: तिलक़ वृक्ष
गणधरों की संख्या	: 35
प्रथम गणधर	: स्वयंभू
प्रथम साध्वी	: दामिनी
केवली सम्पदा	: 3200
मनः पर्यवज्ञानी	: 3340
अवधिज्ञानी	: 2500
चौदह पूर्वी	: 670
वैक्रिय लब्धिधारी	: 5100
शिष्य	: 60000
शिष्याएँ	: 60600
श्रावकों की संख्या	: 179000
श्राविकाएँ	: 381000
निर्वाण कल्याणक	: वैशाख वदि-1
निर्वाण का आसन	: कायोत्सर्गासन
निर्वाण नगरी	: सम्मेत शिखर
निर्वाण का तप	: मास क्षमण
निर्वाण के साथी	: एक हजार साधु
कुमार अवस्था	: 23750 वर्ष
राज्य भोग समय	: 47500 वर्ष

छद्मस्थ अवस्था	: 16 वर्ष	**यक्ष**	: गन्धर्व यक्ष
केवली पर्याय	: 23734 वर्ष	**यक्षिणी**	: बला देवी
दीक्षा पर्याय	: 23750 वर्ष		

स्तुति

शूर राजा और श्रीदेवी के लाड़ले कुंथुनाथजी हैं,
चक्रवर्ती की आज्ञा सारी दुनिया झुकके मानती है ।
धर्मतीर्थ के सारथि जिनवर ! भवसागर में नैया से,
जीवननैया पार लगेगी प्रभुजी हैं खेवैया से ।।

कुंथुनाथ चरित्र

जंबुद्वीप ! पूर्व महाविदेह !

आवर्त विजय ! खड्गी नगरी ।

उस नगर में सिंहावह नाम के राजा राज्य करते थे । सद्धर्म के आचरण में वे खूब उत्साही थे । एक बार संसार के सुखों से विरक्त होकर संवर नाम के आचार्य भगवंत के पास उन्होंने भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

निर्मल चारित्र धर्म का पालन करते हुए और अरिहंत आदि पदों की उपासना करते हुए सिंहावह राजा ने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित किया ।

अंत में अत्यंत ही समाधिपूर्वक देह का त्यागकर वे सर्वार्थसिद्ध विमान में देव के रूप में पैदा हुए ।

तीसरा भव

जंबु द्वीप ! भरतक्षेत्र ! हस्तिनापुर नगर !

वहाँ पर शूर नाम का राजा प्रजा पर शासन करता था । उस राजा के श्रीदेवी नामकी मुख्य पटरानी थी । वह अत्यंत ही शील और सदाचार प्रिय थी ।

सर्वार्थसिद्ध विमान में रहे हुए सिंहावह राजा के जीव ने दिव्य समृद्धि का अनुभव करते हुए अपना दीर्घ आयुष्य पूर्ण किया ।

श्रावण कृष्णा नौमी के शुभ दिन कृत्तिका नक्षत्र में चंद्रमा का योग होने पर उस देव का श्रीदेवी की कुक्षि में अवतरण हुआ ।

उसी समय श्रीदेवी ने तीर्थंकर परमात्मा के जन्म के सूचक 14 महास्वप्न देखे । स्वप्न देखकर महारानी जागृत हो गई । महारानी ने स्वप्न की बात महाराजा को कही । महाराजा का हृदय गद्गद हो गया ।

नौ मास और साढ़े सात दिन का गर्भकाल व्यतीत होने पर वैशाख मास की कृष्णा चतुर्दशी के शुभ दिन कृत्तिका नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर बकरे के चिह्न से अंकित सुवर्ण कांतिवाले पुत्ररत्न को जन्म दिया।

उसी समय 56 दिक्– कुमारिकाओं का आगमन हुआ और उन्होंने प्रभु का सूतिकर्म किया । उसके बाद इंद्रों ने मिलकर मेरु पर्वत पर प्रभु का जन्माभिषेक किया ।

प्रातःकाल होने पर शूर राजा ने भी प्रभु का भव्य महोत्सव क़िया ।

प्रभु जब माँ के गर्भ में थे, तब प्रभु की माता ने कुंथु नाम के रत्न का ढेर देखा था, अतः जन्म के बाद माता-पिता ने प्रभु का नाम 'कुंथु' रखा ।

धीरे-धीरे कुंथुकुमार बड़ा होने लगा । यौवन वय प्राप्त होने पर कुंथुकुमार की काया 35 धनुष प्रमाण हो गई ।

संसार के भोगसुखों से विरक्त होने पर भी एक मात्र अपने भोगावली कर्मों को खपाने के लिए कुंथुकुमार ने अनेक राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया ।

23,750 वर्ष की उम्र में पिता के आग्रह से कुंथुकुमार ने राज्य भी ग्रहण किया ।

एक दिन महाराजा की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ ! कुंथुकुमार ने चक्ररत्न की पूजा की । चक्ररत्न के अनुसार प्रयाण कर कुंथुकुमार ने मागध, वरदाम, प्रभास, सिंधु, वैताढ्य पर्वत के अधिपति आदि को अपने अधीन कर लिया ।

लघु हिमवंत पर्वत के देव को वश में किया, फिर ऋषभकूट पर आचार समझकर अपना नाम लिखा !

फिर गंगा के तट पर रही नैसर्प आदि नौ निधियों को अपने अधीन किया। इस प्रकार छह खंड को जीतने में कुंथुकुमार को 600 वर्ष लगे। दिग्–विजय करके कुंथुकुमार वापस हस्तिनापुर में आए। वहाँ देवता तथा मनुष्यों ने मिलकर चक्रवर्ती के अभिषेक का महोत्सव किया, जो 12 वर्ष तक चला। कुंथुनाथ ने 23,750 वर्ष तक चक्रवर्ती की समृद्धि का भोग किया। उसके बाद लौकांतिक देवों ने आकर प्रभु को 'तीर्थ प्रवर्तन' के लिए विनंति की।

प्रभु ने 1 वर्ष तक निरंतर वार्षिक दान दिया।

वैशाख कृष्णा पंचमी के शुभ दिन विजया नाम की शिविका में आरूढ़ होकर प्रभु सहस्त्र आम्रवन में पधारे।

वहाँ छट्ठ तपपूर्वक प्रभु ने 1000 राजाओं के साथ भागवती-दीक्षा अंगीकार की। उसी समय प्रभु को चौथा मन:पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ।

दूसरे दिन चक्रपुर नगर में व्याघ्रसिंह राजा के गृहांगण में प्रभु ने परमान्न से पारणा किया।

पवन की तरह नि:संग और प्रतिबंधरहित प्रभु ने छद्मस्थ अवस्था में 16 वर्ष तक पृथ्वीतल पर विहार किया - उसके बाद पुनः सहस्त्र आम्रवन में पधारे। वहाँ तिलकवृक्ष के नीचे छट्ठ तप में रहे प्रभु को चैत्र शुक्ला तृतीया के शुभ दिन कृत्तिका नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

इन्द्र तथा देवताओं ने मिलकर प्रभु के केवलज्ञान का महोत्सव किया। देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की। सुवर्ण कमलों पर पदसंचार करते हुए प्रभु ने पूर्व दिशा से समवसरण में प्रवेश किया। 420 धनुष ऊँचे चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा देकर **'नमो तित्थस्स'** कहकर प्रभु पूर्वाभिमुख सिंहासन ऊपर बैठे।

व्यंतर देवों ने शेष तीन दिशाओं में प्रभु के प्रतिबिंब स्थापित किये।

सर्वप्रथम प्रभु की स्तुति करते हुए इन्द्र ने कहा, 'हे प्रभो ! आप तीन जगत् के प्राणियों के मन को हरनेवाले हो, फिर भी आप मन रहित हो।

आप वीतराग हो, फिर भी पूरे जगत् को आपके ऊपर राग है । आप अकिंचन हो, फिर भी जगत् के लिए परम समृद्धि के लिए हो ।'

इसके बाद प्रभु ने धर्मदेशना देते हुए कहा, `84 लाख योनि रूप यह संसार भयंकर दु:खों से भरा हुआ है । इस संसार से पार उतरना हो तो मन-शुद्धि अनिवार्य है । मनशुद्धि न हो तो घोर तप व कठोर त्याग से भी मुक्ति नहीं है ।'

प्रभु की धर्मदेशना सुनकर अनेक व्यक्ति दीक्षा के लिए तैयार हुए । प्रभु ने स्वयंभू आदि 35 को गणधर पद पर स्थापित किया ।

प्रभु के शासन में गंधर्व यक्ष अधिष्ठायक बने और बलादेवी अधिष्ठायिका बनी ।

प्रभु के परिवार में 60,000 साधु, 60,600 साध्वियाँ, 670 चौदहपूर्वधर, 2,500 अवधिज्ञानी, 3,340 मन:पर्यवज्ञानी, 3,200 केवलज्ञानी, 5,100 वैक्रिय लब्धिवाले, 2,000 वादलब्धिवाले, 1,79,000 श्रावक तथा 3,81,000 श्राविकाएँ थीं ।

केवली पर्याय में प्रभु 23,724 वर्ष तक रहे । अपने निर्वाणकाल को नजदीक जानकर प्रभु सम्मेतशिखर पर्वत पर पधारे ।

वहाँ 1,000 मुनियों के साथ प्रभु ने अनशन किया । वैशाख मास की कृष्णा एकम् के दिन कृत्तिका नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर प्रभु ने मोक्ष पद प्राप्त किया ।

प्रभु ने 95,000 वर्ष के अपने आयुष्य को पूर्णकर मोक्षपद प्राप्त किया।

शांतिनाथ प्रभु के निर्वाण से आधा पल्योपम जितना समय व्यतीत होने के बाद कुंथुनाथ प्रभु का निर्वाण हुआ ।

7. श्री अरनाथ चक्रवर्ती और 18 वें तीर्थंकर

नाम	: श्री अरनाथ प्रभुजी
देश	: कुरुदेश
नगर	: हस्तिनापुर नगरी
पिताश्री	: सुदर्शन
मातुश्री	: महादेवी माता
लंछन	: नंदावर्त
वर्ण	: सोने जैसा पीला
ऊँचाई	: 30 धनुष
च्यवन कल्याणक	: फागुन सुदि–2
च्यवन नक्षत्र	: रेवती
गर्भकाल.	: 9 माह 8 दिन
जन्म कल्याणक	: मृगशीर्ष शुक्ल-10
जन्म नक्षत्र	: रेवती
जन्म राशि	: मीन
दीक्षा नगरी	: हस्तिनापुर
दीक्षा स्थान	: सहस्त्राम्रवन
दीक्षा दिन	:मृगशीर्ष शुक्ल–11
दीक्षा समय	: दोपहर
दीक्षा शिविका	: वैजयन्ती
साथ में दीक्षित	: 1000 पुरुष
दीक्षा दिन तप	: दो उपवास
पारणा नगरी	: राजपुर

प्रथम भिक्षादाता	: अपराजित
केवलज्ञान नगरी	: हस्तिनापुर
केवलज्ञान भूमि	: सहस्त्राम्रवन
केवलज्ञान तिथि	: कार्तिक शुक्ल-12
केवलज्ञान तप	: १ उपवास
केवलज्ञान वृक्ष	: सहकार
गणधरों की संख्या	: 33
प्रथम गणधर	: कुम्भ स्वामी
प्रथम साध्वी	: सा. रक्षिका
केवली	: 2800
मनः पर्यवज्ञानी	: 2551
अवधिज्ञानी	: 2600
चौदह पूर्वी	: 610
वैक्रिय लब्धिधारी	: 7300
शिष्य	: 50000
शिष्याएं	: 60000
श्रावकों की संख्या	: 184000
श्राविकाएँ	: 372000
निर्वाण कल्याणक	: मृग शीर्ष सुदि-10
निर्वाण का आसन	: कायोत्सर्ग
निर्वाण नगरी	: सम्मेत शिखर
निर्वाण का तप	: मास क्षमण

निर्वाण के साथी	: 1000 साधु	**केवली पर्याय**	: 20997 वर्ष
कुमार अवस्था	: 21000 वर्ष	**दीक्षा पर्याय**	: 21 हजार वर्ष
राज्य भोग समय	: 42000 वर्ष	**यक्ष**	: यक्षेन्द्र
छद्मस्थ अवस्था	: 3 वर्ष	**यक्षिणी**	: धारिणी

स्तवन

ओ अरनाथ अनन्त सुखदाता देवी रानी के जाए हो,
राजा सुदर्शन के सुत प्यारे प्राणी मात्र को भाए हो ।
शरण तुम्हारी जो भी आए चित प्रसन्नता को पाये,
तुम चरणों की सेवा करके आत्मा उज्ज्वल हो जाए ॥

अरनाथ चरित्र

जंबुद्वीप ! पूर्व विदेह !

वत्स विजय **सुसीमा** नगरी ।

धनपति राजा ।

वह राजा न्याय और नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करता था और जिनोक्त धर्म की आराधना में सदा तल्लीन रहता था ।

संसार से विरक्त बने उस राजा ने **संवर** मुनि के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

एक बार **धनपति** राजर्षि ने चार मास तक निरंतर उपवास किये । जिनदास श्रेष्ठी ने उन्हें पारणा कराया ।

अरिहंत आदि पदों की निर्मल आराधना करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जित किया ।

अंत में अत्यंत ही समाधिपूर्वक भौतिक देह का त्यागकर वे नौवें ग्रैवेयक में महाऋद्धिवाले देव बने ।

तीसरा भव

जंबुद्वीप । भरत क्षेत्र ।

हस्तिनापुर नगर !

उस नगर में **सुदर्शन** नाम का राजा राज्य करता था । उस राजा के पतिव्रता धर्म का पालन करनेवाली **महादेवी** नाम की मुख्य पटरानी थी ।

एक शुभ दिन नौवें ग्रैवेयक में रहे धनपति राजा के जीव का दीर्घ आयुष्य पूर्ण हुआ और फाल्गुण शुक्ला द्वितीया के शुभ दिन रेवती नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर उस देव का महारानी की कुक्षि में अवतरण हुआ। उसी समय महारानी ने तीर्थंकर परमात्मा के जन्म के सूचक चौदह महास्वप्न देखे ।

स्वप्नों को देखकर महारानी जागृत हो गई । महारानी ने अपने स्वप्नों की बात महाराजा को कही ।

स्वप्नों का वर्णन सुनकर महाराजा भी खुश हो गए ।

गर्भकाल व्यतीत होने पर मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी के शुभदिन रेवती नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर नंदावर्त के लांछन से युक्त सुवर्ण के समान कांतिवाले सर्व लक्षणों से युक्त अत्यंत ही तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

उस समय 56 दिक्कुमारिकाओं ने आकर प्रभु का सूतिकर्म किया ।

सौधर्म आदि 64 इंद्र व देवताओं ने मिलकर मेरु पर्वत पर प्रभु के जन्माभिषेक का महोत्सव किया ।

अंत में सौधर्म इन्द्र ने प्रभु की स्तुति करते हुए कहा, ***'हे प्रभो ! आप अठारह दोषों से रहित, अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, पुरुषों के लिए ध्यान करने योग्य अठारहवें तीर्थंकर ऐसे आपको नमस्कार हो ।'***

'हे नाथ ! आप मेरे भवोभव में नाथ हो, बस, इतनी ही आपसे प्रार्थना करता हूँ, अन्य कुछ भी आपके पास नहीं मांगता हूँ !'

इसके बाद इंद्र प्रभु को लेकर माता के पास आए और महादेवी के पास प्रभु को रख दिया ।

प्रात:काल होने पर प्रभु के पिता सुदर्शन ने भी प्रभु का भव्य महोत्सव किया ।

प्रभु जब माँ के गर्भ में थे, तब प्रभु की माता ने स्वप्न में अर अर्थात् चक्र की धारा देखी थी । अतः प्रभु का नाम **'अरनाथ'** रखा गया ।

धीरे-धीरे प्रभु ने यौवनवय में प्रवेश किया । उस समय प्रभु की काया 30 धनुष ऊँची थी । अपने भोगावली कर्मों को खपाने के लिए प्रभु ने अनेक राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया और 21,000 वर्ष की उम्र में प्रभु ने पिता के आग्रह से राज्य भी स्वीकार किया ।

मांडलिकपने में 21,000 वर्ष बीतने के बाद शस्त्रागार में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । उस चक्र के साथ 400 वर्षों में दिग्विजय करके संपूर्ण भरत क्षेत्र में अपना आधिपत्य प्राप्त किया । प्रभु 21,000 वर्ष तक चक्रवर्तीपने में रहे । उसके बाद लौकांतिक देवों ने आकर 'तीर्थप्रवर्तन' के लिए प्रभु से विनंति की ।

वार्षिक दान देकर अपने पुत्र अरविंद को राज्य सौंपकर, वैजयंती नाम की शिविका में आरूढ़ होकर प्रभु सहस्त्र आम्रवन में पधारे । वहाँ मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के शुभदिन रेवती नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर दिन के अंतिम प्रहर में छट्ठ तपपूर्वक प्रभु ने 1000 राजाओं के साथ भागवती दीक्षा अंगीकार की । उसी समय प्रभु को चौथा मन:पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ ।

दूसरे दिन राजपुरनगर में अपराजित राजा ने परमान्न से प्रभु को पारणा कराया ।

विविध प्रकार के अभिग्रहों को धारण करते हुए प्रभु ने तीन वर्ष तक पृथ्वीतल पर विहार किया । उसके बाद प्रभु पुनः सहस्त्राम्रवन में पधारे ।

वहाँ आम्रवृक्ष के नीचे प्रतिमा में रहे प्रभु को शुक्लध्यान करते हुए कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन घातिकर्मों का क्षय होने से केवलज्ञान की प्राप्ति हुई ।

उसी समय देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की । प्रभु ने समवसरण में प्रवेशकर 360 धनुष ऊँचे चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा देकर तीर्थ को नमस्कार कर धर्मदेशना दी ।

प्रभु ने अपनी धर्मदेशना में कहा,

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में मोक्ष पुरुषार्थ ही मुख्य पुरुषार्थ है। उसका साधक ध्यान है। वह ध्यान मन के अधीन है।

द्रव्य आदि पदार्थों में रति और प्रीति का भाव ही राग है और उन पदार्थों में अरति और अप्रीति का भाव ही द्वेष है। ये राग-द्वेष ही आत्मा के लिए प्रबल बंधन रूप हैं। राग और द्वेष की जोड़ी है। राग के अभाव में द्वेष नहीं और द्वेष के अभाव में राग नहीं। काम आदि सभी राग के परिवार हैं और अभिमान आदि द्वेष के परिवार हैं।' राग-द्वेष का बीज मोह है। राग-द्वेष और मोह से ही आत्मा इस संसार में भ्रमण करती है। अतः संसार से मुक्त होना हो तो राग-द्वेष और मोह को जीतने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिए।'

प्रभु की देशना सुनकर अनेक को धर्मबोध हुआ।

प्रभु ने **कुंभ** आदि 33 को गणधर पद पर स्थापित किया।

प्रभु के शासन में **यक्षेन्द्र यक्ष अधिष्ठायक बना** और **धारिणी अधिष्ठायिका** बनी। तीन वर्ष न्यून 21000 वर्ष तक पृथ्वीतल पर विहार करते हुए प्रभु ने अनेक आत्माओं को धर्मबोध दिया।

प्रभु के परिवार में 50000 साधु, 60000 साध्वियाँ 610 चौदह पूर्वधर, 2600 अवधिज्ञानी, 2551 मनःपर्यवज्ञानी, 2800 केवलज्ञानी, 7300 वैक्रिय लब्धिवाले, 1600 वाद लब्धिवाले, 1,84,000 श्रावक तथा 3,72,000 श्राविकाओं का परिवार था।

अपने निर्वाणकाल को देखकर प्रभु सम्मेतशिखर तीर्थ पर पधारे। वहाँ पर 1000 मुनियों के साथ अनशन व्रत को स्वीकार कर मगसर शुक्ला दशमी के दिन रेवती नक्षत्र में चंद्रमा का योग होने पर प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया।

प्रभु कुमार अवस्था में, मांडलिकपने में, चक्रवर्तीपने में तथा श्रमण अवस्था में 21-21 हजार वर्ष पूर्ण कर, कुल 84,000 वर्ष के आयुष्य को पूर्ण कर मोक्ष पधारे।

कुंथुनाथ प्रभु के निर्वाण के कोटि हजार वर्ष न्यून, पल्योपम का चौथा भाग व्यतीत होने पर अरनाथ भगवान का मोक्ष हुआ।

8. सुभुम-चक्रवर्ती

इसी भरत क्षेत्र में विशाल नगर में भूपाल नाम का राजा राज्य करता था । एक बार दुश्मन राजाओं ने मिलकर उसके राज्य पर अचानक हमला कर दिया, जिसके फल स्वरुप उसे हार खानी पडी ।

अपनी हार से विरक्त बने राजा ने संभूत मुनि के पास दीक्षा अंगीकार की ।

भूपाल मुनि अच्छी तरह पालन कर रहे थे, परंतु मृत्यु के अंतिम समय सांसारिक विषय भोगों की प्राप्ति का नियाणा कर बैठे । वे मरकर महाशुक्र देवलोक में देव के रुप में पैदा हुए ।

विषय भोग के नियाणे के फल स्वरुप ही भूपाल मुनि आगे चलकर देवलोक में से च्यवकर भरत क्षेत्र में आठवें सुभूम चक्रवती बनते है ।

हस्तिनापुर नगर में अनंतवीर्य नाम का राजा था । उसी समय वसंतपुर नगर में अग्नि नाम का ब्राह्मण रहता था । बाल्यकाल में ही अनाथ हो जाने से वह अग्नि जंगल में चला गया और तापस बन गया । उसका नाम जमदग्नि पड़ा । अनेक प्रकार की तपसाधना के फलस्वरूप वह लोक में प्रसिद्ध हो गया । देवलोक में वैश्वानर और धन्वंतरी नाम के दो मित्र देव थे । वैश्वानर को जैन धर्म और धन्वंतरी को शैव धर्म पसंद था । एक बार उन दोनों का धर्म के विषय में विवाद हो गया । जघन्य जैनधर्म का पालन करने वाले और उत्कृष्ट तापस धर्म का पालन करने वाले की परीक्षा करने का निश्चय किया । केवली भगवंत की देशना सुनकर मिथिला के राजा पद्मरथ अभी-अभी ही दीक्षा लेने के लिए चंपापुरी जा रहे थे ।

देवताओं ने उनके पास दिव्य भोजन लाकर रखा, परंतु उन्होंने वह भोजन ग्रहण नहीं किया । उसके बाद मार्ग में काँटों को बिखेरा-राजा के पाँव में काँटे लगे परंतु राजा लेश भी विचलित नहीं हुआ ।

उन्होंने सिद्धपुत्र का रूप कर राजा को कहा, ``अभी तो जवानी है । श्रेष्ठ कन्याओं के साथ भोग करो, यह धर्म तो वृद्धावस्था में भी हो सकेगा ।''

तो भी राजा अपने निर्णय से विचलित नहीं हुआ ।

अब वे दोनों देव उत्कृष्ट तापसधर्म का पालन करनेवाले जमदग्नि की परीक्षा के लिए आये । जमदग्नि की दाढ़ी खूब बढ़ी हुई थी । वे देव चिड़ा-चिड़िया का रूप कर ऋषि की दाढ़ी में रहे । उसी समय चिड़ा ने चिड़िया को कहा, **'मैं हिमालय जा रहा हूँ !'**

चिड़िया बोली, **''वहाँ जाकर तुम मुझे छोड़ दोगे ।''**

''प्रिये ! मैं वापस नहीं लौटूँ तो मुझे गोहत्या का...।'' चिड़िया ने कहा, **''गोहत्या का नहीं, इस तापस का पाप मुझे लगे, ऐसी सौगंध लो ।''**

अपनी बात सुनकर जमदग्नि को गुस्सा आ गया । वह बोला, ''तुम मुझे पापी मानते हो ?'' चिड़िया ने कहा, **''आप क्रोध न करें । क्या आपको पता नहीं है ? अपुत्र की गति नहीं होती है । आपको पुत्र नहीं है तो आपकी सद्गति कैसे होगी ?''**

जमदग्नि को लगा, पुत्र बिना मेरा जन्म निरर्थक है । तत्काल ही वह आश्रम छोड़ जितशत्रु राजा के पास आया ।

जमदग्नि के इस आचरण को देख धन्वंतरी देव भी जिनधर्म में अनुरक्त हो गया ।

जितशत्रु राजा ने कहा, ''ऋषिवर ! मेरे लिए कोई आज्ञा ?''

''मैं तुम्हारी कन्या से शादी करना चाहता हूँ ।'' यह सुनकर राजा सोच में पड़ गया ।

''मेरी 100 पुत्रियों में से आपको जो पसंद पड़े, उस कन्या से पाणिग्रहण कर सकोगे ।''

जमदग्नि कन्याओं के अंत:पुर में गया । वे कन्याएँ भयभीत हो गईं ।

लग्न की बात सुनकर वे जमदग्नि का तिरस्कार करने लगीं ।

उसी समय क्रोध में आकर ऋषि ने सभी कन्याओं को कुब्ज-कुबड़ी बना दीया ।

सबसे छोटी रेणुका कन्या को फल का लालच देकर ऋषि ने उसका

हाथ पकड़ लिया। राजा ने भी अपनी कन्या का पाणिग्रहण ऋषि के साथ करा दिया। ऋषि ने अन्य सभी कन्याओं को पुनः ठीक कर दिया।

गर्भवती बनी रेणुका ने ऋषि को कहा, **''मेरे लिए ऐसा श्रेष्ठ फल लाओ, जिससे मेरा पुत्र ब्राह्मणों में श्रेष्ठ बने और अनंतवीर्य राजा की पटरानी मेरी बहन के लिए ऐसा फल लाओ, जिससे उसकी संतान क्षत्रियों में श्रेष्ठ बने।''**

पत्नी की इच्छापूर्ति के लिए जमदग्नि दो फल लेकर आया और वे फल रेणुका को दे दिये।

फल देखकर रेणुका की विचारधारा बदल गई। उसने सोचा, **''बहन का फल मैं खा लूँ तो मेरा बेटा पराक्रमी हो सकेगा।''** इस प्रकार विचारकर बहन का फल उसने खा लिया और अपना फल बहन को दे दिया।

समय बीतने पर दोनो बहनों ने 1-1 पुत्र को जन्म दिया। जमदग्नि रेणुका के पुत्र का नाम राम और अनंतवीर्य के पुत्र का नाम कृतवीर्य रखा गया।

राम बचपन से ही अत्यंत शूरवीर था। एक बार उसने वन में अतिसार रोग से ग्रस्त विद्याधर की सेवा-शुश्रूषा की, उस विद्याधर ने उसे **'परशु'** नाम की विद्या प्रदान की। उसके बाद वह परशुराम के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

एक बार रेणुका अपनी बहिन से मिलने के लिए हस्तिनापुर गई। अनंतवीर्य उसके रूप पर मोहित हो गया। रेणुका भी अनंतवीर्य के मोहजाल में फँस गई। उसने एक पुत्र को जन्म दिया।

एक बार जमदग्नि रेणुका को लेने के लिए हस्तिनापुर आया। रेणुका अपने पुत्र के साथ वन में आ गई।

परशुराम को जब माता के अनाचार का पता चला तो वह अत्यंत ही कुपित हो गया। उसने माता सहित सौतेले भाई की हत्या कर दी।

रेणुका की हत्या के समाचार मिलने पर अनंतवीर्य ने जमदग्नि के आश्रम पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया।

परशुराम के क्रोध का पार न रहा, उसने हस्तिनापुर जाकर अनंतवीर्य को भी खत्म कर दिया। मंत्रियों ने अनंतवीर्य के पुत्र कृतवीर्य को राजा बनाया।

तारा नाम की राजपुत्री के साथ उसका विवाह हो गया ।

एक शुभदिन मध्यरात्रि में तारादेवी ने चौदह महास्वप्न देखे । उसकी कुक्षि में चक्रवर्ती की आत्मा का (सातवें देवलोक में से) आगमन हुआ ।

कृतवीर्य राजा ने जमदग्नि ऋषि का वध कर डाला । परशुराम को इस बात के समाचार मिलने पर उसने कृतवीर्य को खत्म कर दया ।

तारादेवी जंगल में भाग गई । तापसों ने उसे आश्रय दिया और वहीं पर उसने भावी चक्रवर्ती पुत्र को जन्म दिया । बालक का नाम सुभूम रखा गया ।

परशुराम के दिल में क्षत्रियों के प्रति तीव्र द्वेष भाव था, वह जहाँ क्षत्रियों को देखता, उन्हें मार देता । उसने सारी पृथ्वी को सात बार क्षत्रिय रहित बनाया ।

मरे हुए क्षत्रियों की दाढ़ाओं को वह सुवर्ण के थाल में रखता था ।

एक बार उसने किसी निमित्तज्ञ को पूछा, **''मेरी मौत किससे होगी ?''**

निमित्तज्ञ ने कहा, ''जिस पुरुष की दृष्टि से ये दाढ़ाएँ खीर में बदल जाएगी और जो इस खीर का भक्षण करेगा, उसके हाथों से तुम्हारी मृत्यु होगी ।''

धीरे-धीरे सुभूम कुमार की उम्र बढ़ने लगी । उसने यौवन वय में प्रवेश किया । एक राजकन्या के साथ उसका पाणिग्रहण हो गया ।

एक बार सुभूम ने अपनी माँ को पूछा, **'हम इस आश्रम में क्यों रहते हैं ?'**

माँ ने कहा, ''तेरे पिता कृतवीर्य तो हस्तिनापुर के राजा थे, परन्तु परशुराम ने उन्हें मार डाला और वह स्वयं राजा बन गया है । उसने सारे क्षत्रियों को भी मार डाला है । एक भी क्षत्रिय को वह जीवित नहीं छोड़ता था, तेरे भाग्योदय से मैं भागकर जंगल में इस आश्रम में आई, इसी आश्रम में तेरा जन्म हुआ ।

सुभूम के दिल में परशुराम से बदला लेने की भावना जागृत हुई, वह हस्तिनापुर पहुँच गया और दानशाला के सिंहासन पर बैठ गया, उसकी दृष्टि से खीर रूप बनी दाढ़ाओं को पी गया ।

यह दृश्य देख आसपास रहे सभी ब्राह्मण सुभूम को मारने के लिए दौड़े । परंतु अकेले सुभूम ने उन सब को मार डाला ।

उसी समय कोपायमान बना परशुराम वहाँ आ गया । उसने सुभूम के ऊपर अपना अमोघ शस्त्र परशु फेंका । परंतु वह शस्त्र निष्फल ही गया । उसी समय सुभूम को गुस्सा आ गया । उसने उसको मारने के लिए वह खाली थाल फेंका । वह थाल ही चक्र रूप बन गया और उससे परशुराम का सिर कट गया ।

परशुराम का बदला लेने के लिए सुभूम ने 21 बार इस पृथ्वी को ब्राह्मण रहित बना दी ।

आगे चलकर सुभूम ने छह खंड पृथ्वीपर विजय प्राप्त की और वह चक्रवर्ती राजा बना ।

छह खंड का आधिपत्य मिलने पर भी सुभूम को संतोष नहीं था । सातवें खंड को जीतने के लिए वह लवण समुद्र को पार करने के लिए पालकी में आरूढ हुआ । 16000 देवता उस पालकी को उठा रहे थे, परंतु उन सब देवताओं को एक साथ में विचार आया, यदि मैं हाथ छोड़ दूंगा तो क्या फर्क पड़नेवाला है । बस, यह विचार सभी को एक साथ आ गया और वह पालकी समुद्र में गिर पड़ी । सुभूम को 7 वाँ खंड नहीं मिला, परंतु वह मरकर 7 वीं नरक में चला गया ।

चक्रवर्ती, चक्रवर्तीपने का त्यागकर दीक्षा लेते हैं, तो मरकर स्वर्ग में या मोक्ष में जाते हैं, परंतु चक्रवर्तीपने में ही वे मरें तो मरकर अवश्य नरक में ही जाते हैं ।

सुभूम और ब्रह्मदत्त दोनों मरकर 7 वीं नरक में चले गए ।

9. महापद्म-चक्रवर्ती

भरत क्षेत्र ! हस्तिनापुर नगर !!

पद्मोत्तर राजा और ज्वाला महारानी !! स्वप्न में एक शुभ दिन ज्वाला महारानी ने रात्रि में केसरी सिंह देखा। स्वप्न देखकर ज्वाला रानी खुशी से झूम उठी। गर्भकाल पूर्ण होने पर एक शुभ दिन शुभवेला में ज्वाला रानी ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया। बालक का नाम रखा गया-**विष्णुकुमार !**

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा। एक शुभ रात्रि में रानी ने 14 महास्वप्न देखे। गर्भकाल व्यतीत होने पर रानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया-**महापद्म ।**

वय की वृद्धि के साथ विष्णुकुमार और महापद्म के ज्ञान की वृद्धि होने लगी।

इधर उज्जयिनी नगरी में **श्रीवर्म** नाम का राजा राज्य करता था। **नमुचि** नाम का उसका मुख्य मंत्री था जो जैन धर्म का अत्यंत ही द्वेषी था।

एक बार मुनिसुव्रत स्वामी के वरद हस्तों से दीक्षित बने सुव्रत आचार्य अपने विशाल परिवार के साथ पृथ्वीतल को पावन करते हुए उज्जयिनी नगरी में पधारे। नमुचि के हृदय में जैन मुनियों के प्रति तीव्र द्वेष-भाव रहा हुआ था अतः आचार्य भगवंत को परास्त करने के लिए वह उनके पास आया और जैसे-तैसे बकवास करने लगा।

एक क्षुल्लक (बाल) मुनि ने नमुचि को वाद में परास्त कर दिया।

पराजय से दुःखी हुआ नमुचि रात्रि में द्वेष भाव से बालमुनि को मारने के लिए उपाश्रय में आया। परंतु शासन देवी ने उसे तत्काल स्तम्भित कर दिया।

प्रातःकाल होने पर राजा व अन्य लोगों ने नमुचि को दयनीय स्थिति में देखा। आखिर उसने क्षमायाचना की जिसके फलस्वरूप वह बंधन से मुक्त बना।

इधर सुव्रत आचार्य भगवंत विहार करते हुए हस्तिनापुर नगर पधारे। उनकी धर्मदेशना को सुनकर पद्मोत्तर राजा के मन में वैराग्य भावना उत्पन्न हुई और वह दीक्षा लेने के लिए समुत्सुक बना।

उसने आचार्य भगवंत से विनति करते हुए कहा- ``मैं पुत्र को राज्य सौंप कर शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण करने के लिए आपके चरणों में उपस्थित हो जाऊँगा, अतः कृपया आप उतने समय तक यहीं स्थिरता करें।''

आचार्य भगवंत ने कहा, ``इस कार्य में लेश भी प्रमाद मत करना।''

पद्मोत्तर राजा ने नगर में प्रवेश किया। राजमहल में आने के बाद राजा ने विष्णुकुमार को बुलाया और उसे राज्यग्रहण के लिए आदेश किया।

विष्णुकुमार ने कहा, ``पिताजी ! आपकी तरह मेरा भी मन भव से विरक्त बन चुका है...मैं भी इस सुलगते संसार में क्षण भर भी नहीं रहना चाहता हूँ...मैं तो आप ही के साथ मोह के बंधनों का परित्याग कर चारित्र धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ।

राज्य ग्रहण करने से इन्कार करने पर पद्मोत्तर राजा ने अपने छोटे पुत्र महापद्म राजकुमार को अपनी राजगद्दी प्रदान की।

महापद्म राजा ने अपने पिता व ज्येष्ठ बंधु के महाभिनिष्क्रमण का भव्यातिभव्य महोत्सव किया और एक शुभ दिन शुभ वेला में पिता-पुत्र पद्मोत्तर राजा व विष्णुकुमार ने भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली।

गुरुदेव के साथ पृथ्वीतल पर विहार करते हुए विशुद्ध संयम धर्म के प्रभाव से पद्मोत्तर मुनि ने केवलज्ञान प्राप्त किया और आयुष्य पूर्णकर वे शीघ्र ही सिद्धपद के भोक्ता बन गए।

इधर विष्णुकुमार मुनि ने भी उत्कृष्ट तप किया ! उस तप के प्रभाव से उन्हें अनेक प्रकार की लब्धियाँ उत्पन्न हुईं। परंतु वे कभी भी निजी स्वार्थ के लिए उन लब्धियों का उपयोग नहीं करते थे।

इधर उज्जयिनी नगरी का त्याग कर नमुचि मंत्री हस्तिनापुर में आ गया। अपनी व्यावहारिक कुशलता से उसने महापद्म राजा को प्रसन्न किया। खुश होकर महापद्म राजा ने उसे अपना मंत्री बना लिया।

राज्य की सीमा पर सिंहबल नाम का राजा प्रजाजन को अत्यंत ही परेशान करता था ।

महापद्म राजा ने नमुचि मंत्री को कहा, ``क्या सिंहबल को वश में करने का कोई उपाय है ?''

नमुचि ने कहा, ``आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं स्वयं जाकर उसे बंधनग्रस्त बना देता हूँ ।''

बस, महाराजा की आज्ञा प्राप्त कर नमुचि मंत्री ने सिंहबल पर आक्रमण किया और बहुत ही अल्प प्रयास द्वारा उसे बंदी बनाकर महाराजा के सामने उपस्थित कर दिया ।

सिंहबल को बंदी हुआ देखकर महाराजा खुश हो गए । खुश होकर उन्होंने नमुचि को एक वरदान मांगने को कहा ।

नमुचि ने कहा, ``मेरा वरदान न्यास के रूप में आपके पास भले रहे...अवसर आने पर मैं वरदान माँग लूंगा ।''

एक बार अपने विशाल परिवार के साथ सुव्रत आचार्य चातुर्मास करने के लिए हस्तिनापुर नगर में पधारे ।

अपने वैर का बदला लेने का अवसर देखकर नमुचि ने राजा को कहा, ``राजन् ! आपने जो मुझे वरदान दिया था, उस वरदान के रूप में आप मुझे सात दिन का राजा बनाएँ ।''

दृढ़प्रतिज्ञ महापद्म ने नमुचि की बात स्वीकार कर ली और उसे सात दिन का राजा बना दिया ।

इधर नमुचि ने नगर बाहर एक यज्ञ प्रारंभ किया । यज्ञ के अभिषेक प्रसंग पर सभी धर्म के आचार्य उपस्थित हुए परंतु जैन मुनि नहीं आए । बस, छिद्रान्वेषी नमुचि सुव्रताचार्य के पास आकर गुस्से में बोला, ``यज्ञ के अभिषेक प्रसंग पर सभी धर्म के आचार्य आए परन्तु तुम क्यों नहीं आए ? तुम राज्य विरुद्ध चलने वाले होने से अपराधी हो, अतः 7 दिन के भीतर इस नगर को छोड़कर चले जाओ, अन्यथा तुम्हें मार दिया जाएगा ।'' इतना कहकर नमुचि चला गया ।

आचार्य भगवंत ने अपने परिवार को इकट्ठा किया और संघ-शासन के ऊपर आई हुई इस आपत्ति के निवारण के लिए विचारविमर्श प्रारंभ किया ।

उसी समय एक मुनि ने कहा, ``विष्णुकुमार मुनि ने छह हजार वर्ष तक दीर्घ तप किया है, इस तप के प्रभाव से उन्हें अनेक प्रकार की लब्धियाँ उत्पन्न हुई हैं, वे महापद्‌म राजा के ज्येष्ठ बंधु भी हैं, अतः उनके वचन से यह नमुचि अवश्य शांत हो सकता है । अतः उन्हें यहाँ बुलाने के लिए किसी लब्धिधारी मुनि को मेरुपर्वत पर जाना चाहिए, क्योंकि वे अभी मेरुपर्वत पर ध्यान-साधना कर रहे हैं ।

इस उपाय को सुनकर एक मुनि ने कहा, ``मैं अपनी विद्या के बल से मेरुपर्वत तक जाने में समर्थ हूँ, परंतु वहाँ से लौटने की शक्ति मुझमें नहीं है ।''

आचार्य भगवंत ने कहा, ``विष्णुकुमार मुनि तुम्हें वापस ले आएंगे, अतः तुम्हें वहाँ जाना चाहिए ।'' बस, गुरुदेव की आज्ञा होते ही वे मुनि तत्काल आकाशमार्ग से उड़ते हुए मेरुपर्वत पर आ पहुँचे ।

वर्षाऋतु में अचानक मुनि के आगमन को देखकर विष्णुकुमार मुनि सोचने लगे, ``वर्षाऋतु में मुनिगण कहीं भी नगर छोड़कर बाहर नहीं जाते हैं, परन्तु ये मुनि यहाँ आए हैं तो अवश्य ही शासन या संघ का अनिवार्य कार्य होना चाहिए ।''

इसी बीच मुनि ने आकर विष्णुकुमार मुनि को वंदना की । विष्णुकुमार मुनि ने उनके आगमन का कारण पूछा ।

मुनि ने अपने आगमन का कारण बता दिया । कारण का पता चलते ही विष्णुकुमार मुनि उस मुनि को साथ लेकर तत्काल हस्तिनापुर आ गए । गुरुदेव के चरणों में गिरकर उन्होंने भावपूर्वक वंदना की ।

उसके बाद विष्णुकुमार मुनि ने नमुचि राजा को समझाते हुए कहा, ``जैन मुनि वर्षाऋतु में अन्यत्र कहीं भी विहार नहीं करते हैं और वे भिक्षावृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करते हैं, वे वर्षाकाल तक यहीं रहें तो आपको क्या तकलीफ है ?''

महामुनि की यह बात सुनकर गुस्से में आकर नमुचि ने कहा, ``ज्यादा

बकवास मत करो, मैं तुम्हें यहाँ रहने नहीं दूंगा ।''

अत्यंत समर्थ होते हुए भी विष्णुकुमार महामुनि समता व धैर्य धारण कर नमुचि राजा को समझाते हुए बोले, ``यदि तुम्हारी सहमति हो तो वे नगर के बाहर रह जाएंगे ।''

गुस्से में आकर नमुचि ने कहा, ``मैं उनकी गंध भी सहन करने के लिए तैयार नहीं हूँ, अतः ज्यादा बकवास मत करो । यदि तुम्हें जीवन प्रिय हो तो नगर छोड़कर चले जाओ ।''

अंत में मुनिवर ने कहा, ``अच्छा ! तो हमें रहने के लिए तीन कदम भूमि दे दो ।''

नमुचि ने कहा, ``लो, मैं तुम्हें तीन कदम भूमि देता हूँ...परन्तु तीन कदम से बाहर रहे तो मैं तुम्हें मार डालूंगा ।''

बस, संघ और शासन के ऊपर आई हुई इस आपत्ति को देखकर दुष्ट को दंडित करने के लिए विष्णुकुमार महामुनि ने अपनी लब्धि के बल से अपना शरीर बढ़ाना प्रारंभ किया ।

`अपने विशाल देह से पृथ्वी को प्रकंपित करने वाले विष्णुकुमार महामुनि ने लब्धि के बल से एक लाख योजन ऊँचा अपना शरीर बना दिया । उन्होंने अपना एक पैर जंबुद्वीप के पश्चिम समुद्र के किनारे पर और दूसरा पैर पूर्व समुद्र के किनारे पर रख दिया ।

इस वृत्तांत को जानकर महापद्म राजा वहाँ पर आया और अपने अग्रज मुनिवर को भावपूर्वक वंदना करके बोला, ``आप लोकोत्तर गुणों के स्वामी हो और मेरे हृदय मंदिर में बिराजमान हो । यह दुष्ट नमुचि हमेशा संघ व शासन की आशातना-हीलना करता आया है...परन्तु अभी तक मैं उसके अपराध को जान नहीं सका । वह दुष्ट पापी मेरा सेवक है...अतः आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें । इस पापी मंत्री के अपराध से सभी भयभीत बने हुए हैं...अतः आप कोप का त्याग करें ।'' उस समय अनेक सुर-असुरों तथा चतुर्विध संघ ने भी विविध प्रकार से स्तुति की और उनके कोप को शांत करने के लिए प्रयत्न किया । आखिर संघ की प्रार्थना को स्वीकार कर विष्णुकुमार

मुनि ने अपना विशाल रूप संकुचित करना प्रारंभ किया और कुछ ही समय बाद वे अपने मूल रूप में आ गए ।

संघ के आग्रह से महामुनि ने नमुचि मंत्री को छोड़ दिया और राजा ने भी उस दुष्ट मंत्री को देशनिकाले की सजा कर दी ।

तत्पश्चात् विविध तप की आराधना कर विष्णुकुमार महामुनि ने घाति-कर्मों का क्षय कर लिया । वे केवली बने ।

अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर अपना आयुष्य पूर्ण कर समस्त अघाति कर्मों का क्षयकर विष्णुकुमार महामुनि ने शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त किया ।

महापद्म चक्रवर्ती ने भी एक शुभ दिन तृण की भांति छह खंड के साम्राज्य का त्याग कर सद्गुरु के पास दीक्षा अंगीकार की और अपने 1000 वर्ष के संयम पालन में विविध अभिग्रहों को धारण करते हुए एक शुभ दिन समस्त घाति कर्मों के बंधनों को तोडकर केवली बने । अपनी धर्म देशना द्वारा अनेक भव्यात्माओं को धर्म बोध देकर एक दिन शाश्वत सुख के भोक्ता बन गए । कुमार अवस्था में 500 वर्ष, मांडलिकपने में 500 वर्ष दिग्विषय में 300 वर्ष चक्रवर्ती पने में 18700 वर्ष और संयम जीवन में 10000 वर्ष इस प्रकार 30000 वर्ष का आयुष्य पूर्णकर मोक्ष में गए ।

10. दसवे चक्रवर्ती-हरिषेण

भरत क्षेत्र में 21 वें नमिनाथ प्रभु का शासन चल रहा था ।

तब कंपिल्यपुर नगर में सिंहध्वज नाम के महाराजा राज्य करते थे । उनकी पटरानी का नाम वप्रादेवी था । एक बार वप्रादेवी अपने शयन खंड में सोयी हुई थी, उस समय देवलोक में से एक पुण्यवंत आत्मा का उनकी कुक्षि में आगमन हुआ-उसी समय वप्रादेवी ने चक्रवर्ती के जन्म के सूचक चौदह महास्वप्न देखे । उन स्वप्नों को देख महारानी के आनंद का पार न रहा । गर्भकाल व्यतीत होने पर एक शुभ दिन महारानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया । पुत्र का हरिषेण नाम रखा गया ।

एक बार सद्धर्मप्रेमी वप्रारानीने प्रभु का रत्नजड़ित रथ बनवाया ।

महाराजा की दूसरी रानी का नाम लक्ष्मी था, मिथ्यात्व से ग्रस्त वह जिनमत की विरोधी थी ।

एक बार लक्ष्मीरानी ने वप्रारानी को कहा, `आठ दिन के भव्य महोत्सव के बाद ब्रह्मरथ ही आगे रहेगा, जिनेश्वर का रथ उसके पीछे रहेगा ।' यह सुनकर वप्रारानी को बहुत ही दुःख हुआ, यह तो तीर्थंकर परमात्मा का अपमान है, यह बात वप्रारानी सहन नहीं कर पायी ।

अपनी माँ को उदास देखकर हरिषेण ने कहा, `माँ ! आज तू इतनी उदास क्यों है ? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है ?'

पुत्र की यह बात सुनकर माँ ने सारी सत्य घटना सुना दी, और साथ में कहा, `संघ से युक्त जिनेश्वर का रथ ही महोत्सव में आगे रहना चाहिए, यदि ऐसा नहीं होगा तो मैं अनशन करूंगी ।'

माँ के मुख से इस प्रतिज्ञा को सुनकर हरिषेण ने सोचा ! दुःख और शोक से संतप्त माँ को देखने में असमर्थ हूँ, अतः मैं नगर छोड़कर अन्यत्र चला जाता हूँ । इस प्रकार विचार कर वह रात्रि में अवसर देखकर निर्जन वन में चला गया । क्रमशः आगे बढ़ते हुए उसने भयंकर जंगल में प्रवेश किया ।

वहाँ घूमते हुए उसने किसी तापस के आश्रम को देखा । उसने उस आश्रम में प्रवेश किया । हरिषेण उसी आश्रम में तापसों के साथ रहने लगा ।

उस समय चंपापुरी में जनमेजय नाम का राजा राज्य करता था, एक बार काल नाम के राजा ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया । जनमेजय और काल राजा की सेनाएँ आमने-सामने आकर परस्पर लड़ने लगीं, इसी बीच राजा की रानी नागमती अपनी नवयौवना पुत्री के साथ सुरंग मार्ग से निकलकर उसी जंगल में उसी तापस के आश्रम में आ गई ।

राजपुत्री ने जैसे ही हरिषेण के रूप-लावण्य को देखा, वह उसके प्रति एकदम मोहित हो गई ।

राजकुमारी ने अपने दिल की भावना माँ को कही तो माँ ने कहा, 'तू तो भविष्य में चक्रवर्ती की पत्नी होनेवाली है, अतः इस कुमार को तू भूल जा !' राजपुत्री को देखकर हरिषेण भी उसके प्रति आसक्त हो गया ।

राजपुत्री के प्रति मोहित देख तापसों ने हरिषेण को आश्रम से बाहर निकाल दिया ।

आश्रम को छोड़ने पर भी हरिषेण का मोह कम नहीं हुआ । वह रात-दिन उसी राजपुत्री के बारे में सोचने लगा ।

हरिषेण ने सोचा, 'यदि यह कन्या मुझे मिल गई तो मैं भरत क्षेत्र का चक्रवर्ती बन जाऊँगा । यदि मैं चक्रवर्ती बन गया तो सारी पृथ्वी को जिनमंदिरों से विभूषित कर दूंगा ।'

उस राजपुत्री में आसक्त हरिषेण एक बार सिंधुनद नाम के नगर में आ गया । हरिषेण के अद्‌भुत रूप-लावण्य को देखकर सिंधुनद की युवतियाँ उस पर एकदम मोहित हो गईं ।

उसी समय मदोन्मत्त बना हुआ एक हाथी सामने से आ रहा था । उस हाथी को देखकर वे युवतियाँ घबरा गईं और अपने प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भागने लगीं ।

उन युवतियों को भयग्रस्त देखकर हरिषेण उस हाथी के सामने गया । उसने उस हाथी को ललकारा । अपनी संमोहन शक्ति के द्वारा उसने उस

हाथी को अपने वश में कर लिया । हरिषेण उस हाथी पर चढ़ गया और उसने नगर में प्रवेश किया ।

राजमहल के झरोखे में से जब नगर के राजा ने हरिषेण के अद्‌भुत पराक्रम को देखा तो वह खुश हो गया । प्रसन्न होकर राजा ने अपनी एकसौ राजकुमारियों का पाणिग्रहण हरिषेण के साथ करा दिया ।

एक बार हरिषेण रात्रि में सोया हुआ था, तभी वेगवती नाम की विद्याधरी ने उसका अपहरण कर लिया ।

नींद खुलने पर हरिषेण ने पूछा, मेरा अपहरण क्यों कर रही हो ?

वेगवती ने कहा, 'सुनो ! सूर्योदय नगर में इन्द्रधनु विद्याधर राज्य करता है । उसकी पत्नी का नाम श्रीकांता और पुत्री का नाम जयचंद्रा है । किसी निमित्त को पाकर जयचंद्रा के दिल में पुरुषों के प्रति द्वेषभाव पैदा हो गया है । भरतक्षेत्र के सभी राजाओं के चित्र उसे बताए, परंतु कोई चित्र उसे पसंद नहीं पडा, आखिर आपका चित्र उसे बताया । आपका चित्र देखते ही वह मोहित हो गई और उसने संकल्प किया है कि हरिषेण के साथ ही मैं पाणिग्रहण करूंगी अन्यथा अग्नि की शरण स्वीकार करूंगी ।'

'हे कुमार ! मैंने भी उसके सामने दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि यदि मैं हरिषेण को चंद दिनों में लेकर नहीं आई तो मैं भी आग की ज्वालाओं में प्रवेश कर लूंगी ।'

'बस, इसी कारण मैंने तुम्हारा अपहरण किया है । अब मुझे विश्वास है कि मैं उसके प्राणों का रक्षण कर सकूंगी ।'

इतना कहकर वेगवती विद्याधरी हरिषेण को सूर्योदय नगर में ले गई । इन्द्रधनु राजा ने बड़े ही ठाट से अपनी पुत्री का पाणिग्रहण हरिषेण के साथ कराया ।

हरिषेण के साथ जयचंद्रा के विवाह की बात सुनकर गंगाधर और महीधर नाम के विद्याधर गुस्से में आ गए । वे दोनों विराट् सैन्य के साथ सूर्योदय नगर में आ गए । बस, थोड़ी ही देर में गंगाधर-महाधर ने युद्ध प्रारंभ कर दिया । उस युद्ध में हरिषेण ने अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखलाया । उसके

पराक्रम के आगे गंगाधर महीधर टिक न सके । आखिर अपने प्राण बचाने के लिए युद्धभूमि को छोड़कर भाग गए ।

हरिषेण का पुण्य बढ़ने लगा । उसे देवता अधिष्ठित चौदह महारत्नों की प्राप्ति हुई । वे भरत क्षेत्र के छह खंड के विजेता चक्रवर्ती बने ।

एक दिन मदनावली में आसक्त हरिषेण उस तापस आश्रम में पहुँच गए । भयभीत बने जनमेजय ने हरिषेण के साथ उस कन्या का पाणिग्रहण करा दिया ।

बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं के साथ हरिषेण चक्रवर्ती ने एक दिन कंपिलपुर नगर में प्रवेश किया । उसने अपनी माँ के चरणों में नमस्कार किया । अपने पुत्र की ऋद्धि-समृद्धि को देख माँ के हृदय में आनंद समा नहीं रहा था ।

हरिषेण ने जिनेश्वर भगवंत के रत्नजड़ित रथ तैयार करवाए और पूरे नगर में घुमाए । अनेक लोगों ने जैन धर्म स्वीकार किया । हरिषेण ने अनेक जिनमंदिरों का निर्माण कराकर सारी पृथ्वी को जिनमंदिरों से विभूषित किया ।

8850 वर्ष तक चक्रवर्ती की समृद्धि का भोगकर अंत में सारी समृद्धि को त्यागकर भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

350 वर्ष तक संयम धर्म का पालन करते हुए अंत में केवलज्ञान प्राप्त कर 10000 वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर शाश्वत अजरामर मोक्षपद के भोक्ता बनें ।

11. जय चक्रवर्ती

इस अवसर्पिणी काल के 21 वें तीर्थाधिपति नमिनाथ प्रभु के शासन काल में इस अवसर्पिणी के 11 वें चक्रवर्ती पैदा हुए ।

राजगृही नगरी में इक्ष्वाकु वंश के महाराजा समुद्र विजय की पटरानी वप्रादेवी की कुक्षि में एक शुभ दिन पुण्यवंत आत्मा का अवतरण हुआ-और उसी रात्रि में महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे ।

गर्भकाल व्यतीत होने पर महारानी ने एक अत्यंत ही बलवान एवं तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । महाराजा ने बड़े ही भव्य महोत्सव के साथ पुत्र का जन्म-महोत्सव मनाया । एक शुभ दिन बालक का **'जय कुमार'** नाम रखा गया ।

दूज के चाँद की भाँति बालक बढ़ने लगा । देखते-ही-देखते जय ने यौवन वय में प्रवेश किया । शस्त्र और शास्त्रकला में निपुणता प्राप्त की ।

एक शुभ दिन पिता ने जयकुमार को राजगद्दी सौंपकर भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

एक दिन चक्रवर्ती की आयुध शाला में चक्ररत्न पैदा हुआ । जयकुमार ने विधिवत् चक्ररत्न की पूजा की । उसके बाद छह खंड के विजय के लिए प्रयाण किया । 100 वर्ष में छह खंड के 32000 मुकुटबद्ध राजाओं को अपने आधीन कर जयकुमार ने राजगृही नगरी में प्रवेश किया । उसके बाद चक्रवर्ती के राज्याभिषेक का 12 वर्ष का भव्य महोत्सव हुआ ।

1900 वर्षों तक चक्रवर्तीपने की ऋद्धि समृद्धि का भोगकर एक शुभ दिन उस ऋद्धि का त्याग कर भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

उसके बाद 400 वर्षों तक निरतिचार संयम धर्म का पालन कर समस्त घातिकर्मों के बंधनों को तोड़कर केवलज्ञान प्राप्त कर कुल 3000 वर्ष के दीर्घ आयुष्य को पूर्णकर शाश्वत अजरामर मोक्षपद को प्राप्त किया ।

12. ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती

वाराणसी नगरी ।

नगरी का अधिपति था-शंख राजा ।

शंख राजा अत्यंत ही न्यायप्रिय और सदाचारप्रिय थे ।

शंख राजा सदाचार प्रेमी थे परंतु उनकी महारानी दुराचारिणी थी, वह नमुचि मंत्री के प्रेम में पागल थी ।

संसार की यही विचित्रता है, यहाँ एक पूर्व में जाता है तो दूसरा पश्चिम में जाता है । पति और पत्नी की समान विचारधारा सर्वत्र देखने को नहीं मिलती है ।

और एक दिन शंख राजा को नमुचिमंत्री और महारानी के प्रेम प्रकरण की गंध आ गई । आवेश में आकर राजा ने आदेश दिया, ``इस दुष्ट मंत्री को जंगल में ले जाकर मौत के घाट उतार दिया जाय ।''

राजा ने इस कार्य की जवाबदारी चांडाल को सौंप दी ।

वह चांडाल नमुचि को लेकर जंगल में गया । नमुचि मंत्री होने के साथ ही वीणावादन में खूब होशियार था । उसने चांडाल के आगे अपने प्राणों की भीख माँगी ।

चांडाल ने कहा, ``यदि तुम मेरे दो पुत्रों को वीणावादन की कला में निपुण बना दो तो मैं तुम्हें मौत से बचा सकता हूँ ।''

मरता क्या नहीं करता । नमुचि ने चांडाल की शर्त स्वीकार कर ली ।

वह चांडाल, नमुचि को गुप्त रीति से अपने घर ले आया ।

नमुचि चांडाल के पुत्रों को वीणावादन की कला सिखाने लगा । धीरे-धीरे चांडाल के दोनों पुत्र चित्र और संभूति वीणावादन में निपुण हो गए ।

परंतु यह क्या !

अवसर देखकर नमुचि चांडाल की पत्नी के प्रेम में पागल हो गया ।

सचमुच कौआ रात में अंधा होता है और उल्लू दिन में अंधा होता है, परंतु कामांध व्यक्ति तो दिन और रात, दोनों में अंधा होता है ।

राजा की ओर से मृत्युदंड की सजा प्राप्त कर भी नमुचि अपने आपको बदल नहीं सका ।

कामांध व्यक्ति की गति बड़ी विचित्र होती है । उसे न लज्जा होती है और न ही भय होता है ।

एक बार चांडाल, राजा की आज्ञा से बाहर गया हुआ था, इधर नमुचि और चांडालपत्नी को पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई । वे निर्भय होकर काम-क्रीड़ा करने लगे ।

भवितव्यतावश वह चांडाल बीच मार्ग से ही लौट आया और उसने नमुचि के दुर्व्यवहार को अपनी सगी आँखों से देखा । वह नमुचि को मारने के लिए तैयार हुआ परंतु नमुचि तत्क्षण सावधान हो गया, उसने उस चांडाल को जोर से धक्का मारा । वह चांडाल भूमि पर गिर पड़ा...अवसर देखकर नमुचि वहाँ से भाग गया ।

इधर नमुचि के भागने के बाद चांडाल और उसकी पत्नी के बीच रोज झगड़ा होने लगा ।

माता-पिता के बीच रोज हो रहे झगड़ों से चित्र और संभूति त्रस्त हो गए और एक दिन वे दोनों घर छोड़कर भाग गए ।

चित्र और संभूति वीणावादन में खूब होशियार थे । किसी नगर में जाकर वे वीणावादन द्वारा अपनी आजीविका चलाने लगे । उन दोनों के वीणावादन से नगर की स्त्रियाँ उन दोनों के प्रति आकर्षित होने लगीं । यह दृश्य देख नगर के अग्रणी महानुभावों को चिंता होने लगी ।

लोगों ने जाकर राजा को शिकायत की । राजा ने तत्काल ही उन दोनों को देशनिकाले की सजा कर दी ।

चित्र और संभूति देश की सीमा को छोड़कर बाहर निकल गए ।

एक दिन नगर में कौमुदी महोत्सव का आयोजन हुआ । इस महोत्सव में आने के लिए चित्र और संभूति भी तैयार हो गए ।

अपने मुख पर बुरका डालकर वे उस महोत्सव में आ गए और वीणावादन करने लगे । वीणा वादन की अपनी अद्‌भुत कला द्वारा उन्होंने संगीतकारों को भी परास्त कर दिया । लोग उन पर फिदा हो गए ।

परंतु अचानक ही किसी ने आवाज दी, ``ये संगीतकार हमसे अज्ञात रहें यह कैसे चल सकता है ? इनके सिर पर रहे पर्दे को दूर किया जाय ।''

आखिर उन दोनों के सिर पर रहा पर्दा हटा दिया गया ।

पर्दा हटाते ही पता चला कि ये तो वे ही चांडालपुत्र हैं जिनको राजा ने देशनिकाले की सजा की थी । अरे ! ये दुष्ट यहाँ कहाँ से आ गए । 'मारो ! मारो !' लोग चिल्लाने लगे और लकड़ी आदि से उन पर प्रहार करने लगे ।

बड़ी मुश्किल से वे दोनों वहाँ से भागे और एक जंगल में पहुँच गए ।

जंगल में पहुँचने के बाद संभूति ने अपने भाई को कहा, ''क्या हमें जीने का भी अधिकार नहीं है ? हमारी कला ही हमारे लिए दुःख का कारण बनी है । ऐसी अपमानित जिंदगी जीने के बजाय तो क्यों न मौत को भेंट लें । फिर कभी ऐसा अपमान तो सहना नहीं पड़ेगा !''

संभूति के इन विचारों को सुनकर चित्र भी आत्महत्या करने के लिए तैयार हो गया ।

आत्महत्या का दृढ़ संकल्प कर वे दोनों भाई पर्वत पर चढ़ने लगे ।

पर्वत के शिखर पर से चढ़कर वहाँ से कूदकर अपने जीवन का अंत लाने का उन दोनों ने निर्णय कर लिया था ।

अपने इसी संकल्प के अनुसार वे पर्वत पर चढ़े, परंतु भवितव्यता कुछ और ही थी । आत्महत्या के ध्येय से वे पर्वत पर चढ़े, परंतु वहाँ उन्हें किसी त्यागी तपस्वी संयमी महात्मा के दर्शन हो गए ।

महात्मा की सौम्य मुखाकृति को देख उन दोनों के दिल में महात्मा के प्रति एक आकर्षणभाव पैदा हुआ ।

उन दोनों ने महात्मा के चरणों में भावपूर्वक नमस्कार किया ।

महात्मा ने उन्हें 'धर्मलाभ' की आशिष दी । महात्मा के पवित्र चारित्र से वे दोनों खूब प्रभावित हुए ।

उन्होंने अपने दिल की बात महात्मा के आगे प्रगट कर दी ।

उनकी मानसिक वेदना को सुनकर महात्मा ने उन्हें धर्मबोध देते हुए कहा, ***''जीवन में जो कुछ भी कष्ट आते हैं, वे अपने ही किए हुए पापकर्मों के कारण आते हैं, अतः दुःखमुक्त होना हो तो सर्वप्रथम पापमुक्त बनना चाहिए । पापमुक्त हुए बिना दुःखमुक्ति कदापि संभव नहीं है । इस संसार में हर जीव दुःख से छुटकारा पाना चाहता है, परंतु आश्चर्य है कि पापमुक्त किसी***

को नहीं बनना है । पाप का आचरण उत्साह से करते रहता है और दुःख से दूर भागता है, तो दुःखमुक्ति कैसे हो सकेगी ?''

पापों से सर्वथा मुक्त बनना हो तो निष्पाप जीवन को स्वीकार करो । यह निष्पाप जीवन ही साधु-जीवन है । इस जीवन के द्वारा ही भूतकाल में हुए पापों की शुद्धि और वर्तमान जीवन में पापों से मुक्ति हो सकेगी ।''

जिनवचनों को आत्मस्थ करनेवाले मुनि के ये शब्द चित्र व संभूति के हृदय को स्पर्श कर गए ।

उन दोनों भाइयों ने चारित्र-जीवन के स्वीकार का दृढ़ संकल्प कर लिया ।

उन दोनों की वैराग्य भावना को देखकर मुनिवर ने उन्हें चारित्ररत्न प्रदान किया ।

चारित्रजीवन की स्वीकृति के बाद वे दोनों मुनि तप-त्याग की साधना में आकंठ डूब गए ।

कठोर तप-त्याग की साधना द्वारा उन दोनों मुनियों ने अपनी काया की माया उतार दी, उनकी काया अत्यंत ही कृश बन गई थी ।

एक दिन वे दोनों मुनिवर विहार करते हुए हस्तिनापुर नगर में पधारे ।

चांडाल के चंगुल में से बचकर भागा हुआ नमुचि, अपने बुद्धिकौशल के द्वारा यहाँ के महाराजा के मंत्री पद पर प्रतिष्ठित हो गया था ।

उसने जैसे ही उन दोनों मुनियों को देखा, नमुचि को लगा-``इनका अस्तित्व मेरे लिए आपत्ति रूप बन सकता है । अतः किसी भी उपाय से इन्हें इस नगर में से बाहर भगाना जरूरी है ।'' इस प्रकार विचार कर उसने अपने सेवकों को बुलाकर आज्ञा करते हुए कहा, ``इन दोनों साधुओं को पकड़कर नगर से बाहर निकाल दो ।''

मंत्री की आज्ञा होते ही वे राजसेवक उन दोनों मुनियों के पास पहुँच गए और उनके साथ अभद्र व्यवहार करते हुए उन्हें नगर में से बाहर निकालने की चेष्टा करने लगे ।

उन सेवकों द्वारा कृत अपमान को संभूति मुनि सहन नहीं कर पाए । वे भी आवेश में आ गए ।

राजसेवकों को खत्म करने के लिए उन्होंने तेजोलेश्या छोड़ दी। उस तेजोलेश्या की ज्वालाओं से सेवक जलकर खाक हो गए।

संभूति मुनि के क्रोधावेश को देखकर चित्रमुनि स्तब्ध हो गए।

वे सोचने लगे, **''जो जीवन कर्मों से मुक्त होने के लिए है उसी जीवन में ऐसी हिंसक प्रवृत्ति। बस, इस प्रकार लंबा जीवन जीने के बजाय तो अनशन करके इस जीवन का अंत ला देने में ही लाभ है।''** इस प्रकार विचार कर चित्रमुनि अनशन करके अपने जीवन का अंत लाने के लिए तैयार हो गए।

चित्र मुनि ने अपने मन की भावना संभूति मुनि के आगे प्रगट की।

चित्र मुनि के अनशन की बात सुनकर संभूति मुनि भी अनशन करने के लिए तैयार हो गए।

आखिर उन दोनों ने अनशन का संकल्प किया। दिन पर दिन बीतने लगे और एक 'महातपस्वी' के रूप में उन दोनों की कीर्ति नगर में चारों ओर फैलने लगी।

(2) अशुभ निमित्त

चित्र और सम्भूति मुनि। दोनों ने अनशन स्वीकार किया। दोनों मुनि हस्तिनापुर नगर के बाहर कायोत्सर्ग ध्यान की साधना में लीन हो गये।

ज्यों-ज्यों नगरवासियों को इस बात का पता चला कि इन मुनियों ने अनशन स्वीकार किया है...वे उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़े। लोग आ-आकर तपस्वी महामुनियों के चरणों में भक्तिभाव से नमस्कार करने लगे।

उनके कठिन तपधर्म की भावपूर्वक अनुमोदना करने लगे...और उनके दर्शन कर अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे।

सनत्कुमार चक्रवर्ती को जब इस बात का पता चला तो वे भी अपने विशाल परिवार के साथ तपस्वी मुनियों के दर्शन-वन्दन के लिए निकल पड़े। अपने विशाल परिवार के साथ सनत्कुमार चक्रवर्ती ने उभय मुनियों को भावपूर्वक वन्दन नमस्कार किया।

चक्रवर्ती के प्रयाण के बाद चक्रवर्ती का स्त्रीरत्न यानी मुख्य पटरानी सुनन्दा भी महामुनियों के वन्दन के लिए वहाँ उपस्थित हुई।

सुनन्दा ने महातपस्वी सम्भूति मुनि के चरणों में नमस्कार किया।

झुकते समय अचानक सुनन्दा का केशपाश ढीला हो गया। वह केशलता नीचे गिर पड़ी। प्रमाद से उस केशलता का स्पर्श सम्भूति मुनि को हो गया। केशलता के सुकोमल स्पर्श के साथ ही सम्भूति मुनि की विचारधारा एकदम बदल गई।

नारी-देह की भयंकर अशुचिता के दर्शन के बजाय अब उन्हें स्त्रीरत्न के देह में अद्भुत सौन्दर्य दिखाई देने लगा।

वे सोचने लगे, ``अहो ! जिसके केशपाश के स्पर्श में इतनी सुखानुभूति होती हो, उस स्त्रीरत्न की प्राप्ति में कितनी सुखानुभूति होती होगी ?

``अहो ! मैंने इस कष्टमय साधना के पीछे अपना अमूल्य जीवन खो दिया। धन्य है यह चक्रवर्ती ! जिसको ऐसे अद्भुत रूप व लावण्य की साक्षात् मूर्ति समान स्त्रीरत्न की प्राप्ति हुई है।'' सम्भूति मुनि स्त्रीरत्न के सुख की कल्पना में खो गये।

संसार के बाह्य सुखों के परित्याग के साथ-साथ अनशन की स्वीकृति द्वारा कठोरतम तपश्चर्या करने वाले सम्भूति मुनि की विचारधारा स्त्रीरत्न की केशलता के स्पर्शमात्र से बदल गई। यह कैसी विचित्रता ! एक छोटे से निमित्त ने उनकी वर्षों की तप-त्याग की साधना को धूमिल कर दिया।

संभूति मुनि के दिल में मानों सुनन्दा बस गई हो-इस प्रकार वे अपने आपको भूल गए...अपनी उत्तमोत्तम साधना को भूल गये...और बस, उसी के विचारों में खो गये।

चित्र मुनि तो अपनी साधना में मस्त थे परन्तु संभूति मुनि तो स्त्रीरत्न के विचारों से त्रस्त थे।

उन्होंने चित्र मुनि को कहा-``सचमुच, मैं अपना जीवन हार गया हूँ।''

``क्यों ? कैसे ?''

संभूति मुनि ने कहा-``अभी-अभी सनतकुमार चक्री की स्त्रीरत्न सुनन्दा मुझे वन्दनार्थ आई थी। अचानक उसकी केशलता का मुझे स्पर्श हो गया...और मैं स्तब्ध हो गया। अहो ! कितना सुकोमल स्पर्श ! सचमुच, यह त्यागमय कठोर जीवन जीकर मैं अपने जीवन को हार गया हूँ। हे मुनिवर ! मैंने तो अब मनोमन निदान कर लिया है कि यदि जीवन में किये गये तप-जप

का फल हो तो आगामी जन्म में मैं चक्रवर्ती बनूँ और मुझे ऐसे स्त्रीरत्न की प्राप्ति हो।''

संभूति मुनि की यह बात सुनकर चित्रमुनि तो एकदम स्तब्ध रह गये।

``अहो ! यह क्या ! ऐसे कठोर तप की साधना से मोक्ष को हथेली में ला दिया और उसे इस निदान द्वारा दूर धकेलने की चेष्टा ?''

चित्र मुनि ने कहा-``मुनिवर ! तुमने यह क्या कर दिया ? यह तो ऐरावण हाथी को बेचकर गधा खरीदने जैसी बात हो गई। जो साधना शाश्वत जीवन देने में समर्थ है, उस साधना के फलस्वरूप ऐसी तुच्छ याचना ! यह तुम्हारे जैसे विवेकी के लिए उचित नहीं है।''

चित्र मुनि ने अनेक युक्तियों के द्वारा संभूति मुनि को समझाने की कोशिश की, किन्तु सम्भूति मुनि अपने संकल्प से लेश भी पीछे नहीं हटे।

चित्र मुनि का प्रयास निष्फल गया। संभूति मुनि अपने निदान-संकल्प के अनुसार आगामी भव में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बने....।

(3) पतन

कांपिल्यपुर नगर में ब्रह्म नाम का राजा राज्य करता था। उसकी मुख्य रानी का नाम चुलनी था।

एक शुभ दिन चुलनी रानी ने चौदह महास्वप्न देखे।

रानी के आनंद का पार न रहा।...एक शुभ दिन महारानी ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया और **'ब्रह्मदत्त'** ऐसा नाम किया गया।

धीरे-धीरे ब्रह्मदत्त बड़ा होने लगा।

काशी देश के राजा कंटक, हस्तिनापुर के राजा करेण्ड, कोशल देश के राजा दीर्घ, चंपानगरी के राजा पुष्पचूल और कांपिल्यपुर के राजा ब्रह्म की परस्पर गाढ़ मैत्री थी। वे सभी राजा परस्पर के स्नेह से एक-दूसरे के राज्य में एक-एक वर्ष तक आकर रहते थे।

एक बार ब्रह्म के मस्तक में भयंकर वेदना उत्पन्न हुई। ब्रह्म ने अपने मित्रों को कहा, ``ब्रह्मदत्त को राज्य पर स्थापित कर तुम इस राज्य की व्यवस्था संभालना।'' इतना कहकर ब्रह्म ने इस संसार से सदा के लिए विदाई ले ली।

दीर्घ राजा कांपिल्यपुर में रहा । चुलनी के साथ निरंतर संपर्क के फलस्वरूप उन दोनों में परस्पर प्रेमसंबंध हो गया ।

ब्रह्म राजा के मंत्री धेनु को इस बात का पता लग गया । धेनु मंत्री ने यह बात अपने पुत्र वरधनु को कही । वरधनु ने यह बात ब्रह्मदत्त को कही ।

अपनी माता के साथ दीर्घ राजा के इस दुर्व्यवहार को जानकर ब्रह्मदत्त को अत्यंत ही आघात लगा ।

एक दिन वह ब्रह्मदत्त एक कोयल और कौए को लेकर अंत:पुर में गया और वहाँ उन दोनों के बीच संबंध कराकर कौए को मारते हुए बोला-**``मेरे राज्य में यदि कोई ऐसा गलत व्यवहार करेगा तो उसे इसी प्रकार मौत के घाट उतार दूंगा ।''**

ब्रह्मदत्त के इस व्यवहार को देखकर चुलनी एकदम घबरा गई । उसे अपनी आँखों के सामने मौत दिखाई देने लगी ।

एक ओर आसक्ति के कारण चुलनी, दीर्घ राजा के साथ संबंध तोड़ने के लिए राजी नहीं थी तो दूसरी ओर उसे अपने इस गलत व्यवहार के बदले मौत का भय भी दिखाई दे रहा था । आखिर क्या करना ? उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था ।

संध्या के समय में जब दीर्घराजा चुलनी के पास आया, तब चुलनी ने वह सारा वृत्तांत दीर्घ राजा को सुना दिया ।

दीर्घ राजा ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, ``ब्रह्मदत्त से घबराने की कोई जरूरत नहीं है । तू लेश भी चिंता मत कर ।''

चुलनी को आश्वासन देकर दीर्घ राजा वहाँ से रवाना हो गया ।

इधर ब्रह्मदत्त ने अंत:पुर के द्वार पर कठोर चौकी लगा दी ।

दीर्घ राजा को जैसे ही इस बात का पता चला, उसके गुस्से का पार न रहा । वह किसी भी उपाय से ब्रह्मदत्त को खत्म करने के लिए तैयार हो गया ।

ब्रह्मदत्त को कैसे खत्म किया जाय ? इसके लिए विचार करते करते दीर्घ एक निर्णय पर आया । उसने अपनी योजना चुलनी के सामने प्रस्तुत की ।

उसने कहा-``नगर के बाहर मैं एक लाक्षागृह बनवा देता हूँ । इसी बीच ब्रह्मदत्त के पाणिग्रहण का आयोजन किया जाय । लग्न के बाद वह अपनी

पत्नी के साथ उस महल में जाएगा। महल में प्रवेश के बाद तुरंत ही वहाँ आग लगा दी जाएगी। उस आग की ज्वालाओं में ब्रह्मदत्त भस्मीभूत हो जाएगा।

बस, अपना यह काँटा सदा के लिए दूर हो जाएगा। फिर तो हमारे सुख में कोई बाधक नहीं बन पाएगा।''

एक ओर ब्रह्मदत्त को मार डालने के षड्यंत्र की गुप्त योजना बन रही थी तो दूसरी ओर ब्रह्मदत्त के पुण्य का सितारा भी चमक रहा था।

यद्यपि दीर्घ और चुलनी ने एकांत में बैठकर गुप्त मंत्रणा की थी, परंतु इस षड्यंत्र की गंध राजा के मंत्री धनु को आ गई। उसके दिल में ब्रह्मदत्त के प्रति पूर्ण वफादारी थी, धनु ने यह बात वरधनु को कही।

इधर दीर्घ राजा ने लग्न के बाद ब्रह्मदत्त के निवास के लिए लाक्षागृह का निर्माण प्रारंभ करा दिया।

अपनी वृद्धावस्था को देखते हुए धनुमंत्री ने राज्य के कार्यभार से निवृत्ति ले ली।

मंत्रीपद से निवृत्त होने के बाद धनुमंत्री ने नगर के बाहर दानशाला प्रारंभ की।

इधर सैकड़ों लोग लाक्षागृह के निर्माण में जुटे हुए थे तो दूसरी ओर ब्रह्मदत्त को बचाने की भावना से धनु ने भी उस लाक्षागृह के भीतर एक भोयरे का निर्माण चालू करा दिया। थोड़े ही दिनों में वह भोंयरा तैयार हो गया। उस भोंयरे के नीचे एक सुरंग तैयार कराई गई, जिसका एक द्वार नगर के बाहर जंगल में खुलता था।

एक ओर चुलनी और दीर्घ राजा ब्रह्मदत्त को खत्म करने के लिए प्रयत्नशील थे तो दूसरी ओर धनु और वरधनु कैसे भी संयोगों में ब्रह्मदत्त को बचाने के लिए प्रयत्नशील थे।

चक्रवर्ती का आयुष्य बलवान होता है। वे विशिष्ट पुण्य के धारक होते हैं। उत्तम आत्माओं को ही चक्रवर्ती जैसे उत्तम पद प्राप्त होते हैं।

एक शुभ दिन ब्रह्मदत्त का पाणिग्रहण हो गया। रात्रि के समय में जब ब्रह्मदत्त ने अपने लिए नवनिर्मित भवन में प्रवेश किया, उस समय श्वसुर पक्ष की ओर से राजकन्या के बजाय किसी दासीपुत्री को भेजा गया।

उस भवन में वरधनु, ब्रह्मदत्त और नवोढ़ा दासी पुत्री ने प्रवेश किया.. और थोड़ी ही देर बाद पूर्व योजनानुसार उस भवन में आग लगा दी गई। लाख को आग पकड़ते कितनी देर लगती है ? थोड़ी ही देर में तो आग की लपटों में वह सारा भवन भस्मीभूत हो गया।

इधर महल के बाहर ज्योंही आग लगी, वरधनु सावधान हो गया। उसने तत्काल ही गर्भगृह का द्वार खोल दिया। ब्रह्मदत्त, वरधनु और दासीपुत्री भोंयरे में उतर गये। वे तीनों सुरंग के मार्ग से जंगल में आ गए।

दासीपुत्री अपने घर भेज दी गई। इधर ब्रह्मदत्त और वरधनु ने अपना मस्तक मुँडा दिया। वे गुप्त वेश में जंगल की ओर आगे बढ़े।

लाक्षागृह में आग लगने के बाद दीर्घ राजा और चुलनी मनोमन खूब खुश हुए। परंतु बाहर से तो ब्रह्मदत्त के वियोग की वेदना का ही प्रदर्शन किया।

परपुरुष के साथ गलत संबंध रखनेवाली चुलनी अपने पुत्र की मृत्यु की कल्पना से अंदर से खुश थी। **ऐसा ही तो यह स्वार्थी संसार है जिसमें कामांध बनी माता अपने सगे पुत्र को ही मौत के घाट उतारने के लिए तैयार हो जाती है।**

ब्रह्मदत्त और वरधनु संन्यासी के वेष में कटकराज के पास पहुँच गए।

कटकराज ने उन दोनों को स्नेह से नहला दिया। इसके साथ ही उन्हें संन्यासी के वेष में आने का कारण पूछा।

ब्रह्मदत्त ने सारी घटना कटकराज को सुना दी। जिसे सुनकर कटकराज भी स्तब्ध हो गया।

ब्रह्मदत्त दीर्घ राजा के दुर्व्यवहार को भूला नहीं था। एक दिन उसने दीर्घ राजा को युद्ध के लिए ललकारा।

दीर्घ राजा भी युद्ध के लिए तैयार हो गया। विराट् सैन्य के साथ उसने चढ़ाई की। कटकराजा ने ब्रह्मदत्त की मदद के लिए अपना विशाल सैन्य सौंपा। दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ और आखिर इस युद्ध में ब्रह्मदत्त ने दीर्घ को यमलोक पहुँचा दिया।

दीर्घ राजा की मृत्यु के बाद ब्रह्मदत्त वाराणसी नगरी का राजा बना। राज्य की धुरा को उसने अच्छी तरह से वहन किया।

एक दिन उसने भरत क्षेत्र के छह खंड को जीतने के लिए दिग्विजय हेतु प्रस्थान किया ।

संभूति मुनि के भव में अपनी चारित्रधर्म की साधना के फलस्वरूप चक्रवर्ती बनने का नियाणा किया था । इस कारण ब्रह्मदत्त को छह खंड को जीतने में विशेष तकलीफ नहीं पड़ी ।

वह अल्प समय में ही छह खंड का विजेता राजाधिराज चक्रवर्ती बन गया ।

12 वर्ष तक ब्रह्मदत्त के चक्रवर्तीपने के राज्याभिषेक का महोत्सव चला । सुनंदा जैसे स्त्रीरत्न के साथ वह 14-14 रत्नों का अधिपति भी बन गया ।

ब्रह्मदत्त का चक्रवर्ती के रूप में अभिषेक हुआ । समस्त राज्य में खूब खुशियाँ मनाई गईं ।

एक बार चक्रवर्ती की सभा में एक नट मंडली आई । नट मंडली के अध्यक्ष ने चक्रवर्ती से निवेदन किया-``आज आपके समक्ष मधुकरी गीतनृत्य का प्रदर्शन करना चाहता हूँ ।'' चक्रवर्ती की अनुमति प्राप्त कर नट ने नाटक प्रारम्भ किया । नाटक के भावपूर्ण नृत्य देखते हुए, मधुर गीत सुनते हुए चक्रवर्ती उसमें गहरा लीन हो गया । उसे अनुभूति होने लगी कि ऐसा नृत्य पहले भी कहीं देखा है ? चिन्तन में गहरा लीन होने पर उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया । देवलोक का दृश्य आँखों के सामने आया । सौधर्म देवलोक के पद्मगुल्म विमान का समूचा दृश्य स्मृतियों में साकार हो उठा । पूर्व जन्म की स्मृतियाँ करते-करते चक्रवर्ती मूर्च्छित हो गया । शीतल उपचार करके उन्हें स्वस्थ किया गया । पिछले पाँच जन्म की याद आने लगी । अपने सगे भाई से मिलने को मन आतुर-बेचैन हो उठा । पर वह है कहाँ ? कहाँ पता लगे उसका ? भाई की खोज करने के लिए चक्रवर्ती ने एक श्लोक के दो चरण बनाये-

आस्व दासौ मृगौ हंसौ मातंगावमरौ तथा ।

और अपने सेवकों को कहा-यह गाथा सर्वत्र प्रचारित कर दो, जो इस गाथा के अगले चरण की पूर्ति कर देगा उसे आधा राज्य दिया जायेगा ।

चक्रवर्ती के आदेशानुसार गाथा प्रचारित हो गई । जन-जन के मुँह पर यह श्लोक नाचने लगा ।

इधर चित्र के जीव ने देवलोक से च्यवकर पुरिमताल नगर के इभ्यसेठ के घर जन्म लिया। पूर्व संस्कारों के कारण वैराग्य हुआ और दीक्षा लेकर तपस्या-कायोत्सर्ग करने लगा। मुनि विहार करते हुए कांपिल्यपुर के बाहर मनोरम कानन में आकर ठहरे और कायोत्सर्ग में स्थित हो गये। पास ही एक किसान का खेत था। किसान खेत में रहट चला रहा था और साथ ही यह गाथा भी बोलता जा रहा था–

आस्व दासौ मृगौ हंसौ मातंगावमरौ तथा।

मुनि के कानों में यह श्लोक पड़ा तो तुरन्त ही उन्होंने आगे के चरण को यों पूरा कर दिया–

एषा नौ षष्ठिका जातिः अन्योन्याभ्यां वियुक्तयोः ।।

किसान ने श्लोकपूर्ति सुनी तो वह मारे हर्ष के उछल पड़ा। आगे के चरण को वह रटता हुआ तुरन्त दौड़ा और राजसभा में पहुँचा। चक्रवर्ती को सूचना भेजी कि कोई श्लोक की पूर्ति लेकर आया है। चक्रवर्ती ने उसे बुलाया, श्लोक सुना, बस सुनते ही वह स्नेहवश मूर्च्छित हो गया। किसान को तो लेने के देने पड़ गये। जब उसे पीटा गया तो घबराकर उसने कहा-यह पूर्ति मैंने नहीं की., मेरे खेत के पास एक मुनि खड़े हैं, उन्होंने की है। तब तक शीतल उपचार से चक्रवर्ती को होश आ गया, सारी घटना पूछी।

सम्राट् नंगे पाँवों दौड़कर मुनि के पास पहुँचे, वन्दना की और अब पूर्वकृत पुण्य-पाप-फलों की चर्चा करने लगे।

ब्रह्मदत्त (सम्भूति) का काम्पिल्य में और चित्र का पुरिमताल में जन्म–

जाति से अत्यन्त तिरस्कृत सम्भूति मुनि ने हस्तिनापुर में निश्चय से चक्रवर्ती बनने का निदान किया था, इसीलिए तो उसने पद्मगुल्म नामक देवविमान से च्यवकर (मनुष्य भव में) चुलनी की कुक्षि से ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में जन्म पाया।

काम्पिल्य नगर में सम्भूति का जीव उत्पन्न हुआ, तथा चित्र (चित्र) का जीव पुरिमताल नगर में विशाल, श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न हुआ। (वयस्क होने पर) धर्म-श्रवण कर वह साधुधर्म में दीक्षित हुआ।

ब्रह्मदत्त चक्री और चित्रमुनि का काम्पिल्यपुर में मिलन–

काम्पिल्य नगर में एक बार चित्र और सम्भूति दोनों एकत्र मिले और

उन दोनों ने परस्पर पुण्य-पापजन्य सुख-दु:खरूप कर्मफल के सम्बन्ध में बातचीत की ।

ब्रह्मदत्त द्वारा पाँच भवों से सहोत्पत्ति और छठे भव में पृथक्ता का कथन–

महान् ऋद्धि-सम्पन्न और महायशस्वी चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने अतिशय सम्मान के साथ अपने पूर्वभवीय बड़े भाई चित्रमुनि से कहा–

इस जन्म के पूर्व हम दोनों परस्पर अनुरक्त और एक-दूसरे के हितैषी भाई-भाई थे ।

हम दोनों पहले दशार्ण देश में दास थे, फिर कालिजर पर्वत पर मृग, तदनन्तर मृतगंगा के किनारे हंस और तत्पश्चात् काशी देश में चाण्डाल पुत्र हुए थे ।

फिर हम दोनों देवलोक में महान् ऋद्धि से सम्पन्न देव हुए थे । यह हमारा छठा जन्म है, जिसमें हम एक-दूसरे को छोड़कर पृथक्-पृथक् हो गए ।

राजन् ! तुमने निदान कृत कर्मों का विशेषरूप से चिन्तन किया, उन्हीं कर्मों के फलोदय से हम दोनों का इस जन्म में वियोग हुआ है ।

ब्रह्मदत्त द्वारा पूर्व शुभकर्मकृत सुखभोग का कथन–

हे चित्र ! मैंने पूर्वजन्म में सत्य और शौच से प्रसिद्ध जो कर्म किये थे, आज उनके फल का मैं परिभोग कर रहा हूँ । क्या तुम भी उन कृत कर्मों का फल उसी प्रकार भोग रहे हो ?

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने चित्रमुनि से कहा कि पूर्वजन्मकृत शुभकर्मों के फलस्वरूप जो राजसुख तथा स्त्रीरत्न आदि के उपभोग का सुख-भोग कर रहा हूँ, क्या तुम भी (चित्र) वैसे सुफल भोग रहे हो ? तात्पर्य यह है कि तुम उन सुकृतों का फल कहाँ भोग रहे हो ? क्योंकि तुम तो भिक्षुक बनकर कष्ट पा रहे हो, इसलिए तुम्हारे द्वारा किये वे सुकृत निष्फल हो गये ।

चित्रमुनि द्वारा विषय-सुख और आत्मसुख की उपलब्धि का कथन–

मनुष्यों के द्वारा सम्यक् प्रकार से किए सभी कर्म सफल होते हैं । किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता, अथवा मुक्ति नहीं मिलती । मेरी आत्मा भी उत्तमोत्तम अर्थों (सांसारिक धन-धान्यादि पदार्थों) और कामों (शब्दादि विषय-भोगों) के द्वारा, पुण्य फल से युक्त रही है ।

हे सम्भूति ! जैसे तुम अपने आपको महाभाग्यशाली, महाऋद्धि सम्पन्न और पुण्य फल से युक्त समझते हो, उसी तरह चित्र को भी समझो। राजन् ! चित्र के पास भी प्रचुर ऋद्धि और द्युति विद्यमान थी।

किन्तु अल्पाक्षर और महान् अर्थरूप गाथा स्थविरों ने जनसमूह के बीच गाई, जिसे सुनकर मैं भी श्रमण बन गया हूँ।

ब्रह्मदत्त द्वारा चित्रमुनि को भोगों के लिए आमंत्रण–

हे चित्र ! उच्च, उदय, मधु, कर्क और ब्रह्म, ये पाँच प्रकार के प्रासाद तथा और अनेक प्रकार के रमणीय प्रासाद जो देवों द्वारा निर्मित हैं, पांचाल देश के विशिष्ट इन्द्रिय भोगों से युक्त एवं धन-धान्यादि से परिपूर्ण इस घर को भी स्वीकार करो।

हे भिक्षु ! तू नाट्य, गीत और वाद्यों के साथ इन कामिनियों से परिवृत्त होकर इन भोगों को भोग। मुझे यही रुचिकर लगता है।

पूर्वभव के स्नेहवश अनुरागी तथा कामभोगों में आसक्त उस राजा (चक्रवर्ती) को, धर्म में स्थिर एवं उसके हितैषी चित्रमुनि ने कहा, सब गीत विलापरूप हैं, सभी नाटक विडम्बनारूप हैं, सभी आभूषण भारभूत हैं तथा समस्त कामभोग दुःखप्रद हैं।

राजन् ! मूढ़जनों के लिए रमणीय किन्तु दुःखावह काम-भोगों में वह सुख नहीं है, जो सुख काम-विरक्त, शीलादि गुणों में रत, तपोधन भिक्षुओं को प्राप्त है।

चाण्डाल जाति, जो मनुष्यों में अधम जाति मानी जाती है, उसमें हम दोनों ने जन्म लिया था। जहाँ हम दोनों चाण्डालों के आवासों में सब लोगों के घृणा के पात्र होकर रहते थे।

उस पापिष्ठ चाण्डाल जाति में, जन्म लेकर हम दोनों चाण्डाल के घर में रहते थे, तब सभी लोगों के घृणापात्र बने हुए थे, किन्तु इस जन्म में, जो उच्चता या श्रेष्ठता प्राप्त है, वह पूर्वजन्म में किये हुए शुभकार्यों के फलस्वरूप है।

पूर्व जन्म में निन्दित उसी सम्भूति का जीव तू इस समय महाभाग्यवान् महाऋद्धि-सम्पन्न एवं पुण्यफलों से युक्त सम्राट् बना है, अतः इन क्षणिक कामभोगों को छोड़कर अब तू चारित्रधर्म की आराधना हेतु दीक्षा ग्रहण कर।

विषय-भोगों के उपभोग भी तृष्णा एवं लालसा के परिवर्द्धक होने से एक प्रकार से दु:खरूप ही हैं । किम्पाक फल के समान ये देखने, चखने ओर सूँघने में भले ही मनोज्ञ लगें, परन्तु जैसे किम्पाक फल का उपभोग विनाश का कारण होता है, वैसे ही शब्दादि विषयों का आसक्तिपूर्वक उपभोग भी भोक्ता का समूल विनाश कर डालते हैं । ये विषय-भोग, परमार्थ से अनभिज्ञ अज्ञानी जनों को ही रमणीय एवं सुखदायक लगते हैं, परन्तु विरक्त एवं तत्त्वज्ञ साधु वर्ग के लिए ये पुन:पुन: जन्म-मरणादि रूप भयंकर दु:ख के कारण हैं । इन्हें सुख के हेतु समझना, मृत्यु को जीवन समझने के समान महामूढ़ता है । ये शब्दादि विषय ईर्ष्या, विषाद आदि के कारणभूत होकर चित्त में व्याकुलता तथा व्यग्रता पैदा करते हैं । इनमें आसक्ति से आत्मा अपने स्वरूप से भ्रष्ट होकर नरक, निगोद आदि भवों में जाकर नाना दु:खों को भोगती है ।

मूढ़जनों को प्रिय एवं परिणाम में दु:खद कामभोगों में वह सुख कहाँ, जो काम-भोगों से विरक्त शीलगुणानुरक्त साधुओं को होता है ? जो लोग विवेकविकल हैं, उन्हें ही काम-भोगादि विषय प्रिय लगते हैं परन्तु वास्तव में ये समस्त दु:खों के मूल हैं । क्योंकि विषयी पुरुषों को विषयवासना से कदापि सुख-शान्ति नहीं मिलती, प्रत्युत् वे प्रतिक्षण अशान्त एवं संतप्त रहते हैं, जबकि संयमशील तपस्वी पुरुषों को आत्मरमणता से जो अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है, उस आनन्द के एक कण का सहस्त्रांश भी काम-भोगों में उपलब्ध नहीं होता । कहा भी है-लोक में जो कामजनित सुख है, और जो देवों का महान् सुख माना जाता है, ये दोनों सुख तृष्णाक्षयजनित सुख के समक्ष सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है ।

चित्रमुनि ने ब्रह्मदत्त चक्री को यह समझाया कि-कहाँ तो एक दिन हम अधमाधम चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुए थे, यहाँ हमारे साथ किसी की सहानुभूति नहीं थी, सभी हमसे द्वेष और घृणा करते थे, इस प्रकार के घृणित जीवन से ऊपर उठकर हमने जो समस्त काम-भोगों से विरक्त होकर, तथा जातिगत तिरस्कार एवं दु:खों को समभाव से सहकर मुनिधर्म का आचरण किया । जिससे अशुभकर्मों का क्षयोपशम हुआ और शुभकर्मों का बन्ध पड़ा, उसके फलस्वरूप आज इतनी उच्च स्थिति में तुम (सम्भूति का जीव) पहुँचे हो, अब इस जीवन को क्षणभंगुर भोगों में समाप्त न चारित्रधर्म को अंगीकार

करो । क्योंकि चाण्डाल जाति से उद्धार होते-होते इस चक्रवर्ती रूप स्थिति तक पहुँचे हो, इसमें श्रुत-चारित्र धर्म ही सहायक हुआ है । अतः यदि तुम शाश्वत सुख की प्राप्ति करना चाहते हो, तो इन अशाश्वत भोगों का परित्याग करके उसी चारित्र धर्म की छत्रछाया में आ जाओ ।

हे राजन् ! इस अशाश्वत मानव-जीवन में जो प्रचुर पुण्य कर्म नहीं करता, वह मृत्यु निकट आने पर पछताता है, और धर्म न करने पर परलोक में भी दुःखानुभव करता है ।

उस निर्जीव तथा चिता पर रखे हुए एकाकी तुच्छ शरीर को अग्नि से जलाकर पत्नी, पुत्र या जाति-जन भी किसी आश्रयदाता का अनुसरण करते हैं ।

राजन् ! कर्मों के द्वारा किसी प्रकार की असावधानी (प्रमाद) रखे बिना प्रतिक्षण यह जीवन मृत्यु के निकट ले जाया जा रहा है और यह वृद्धावस्था मनुष्य के शारीरिक लावण्य को हरण कर रही है । इसलिए हे पांचालराज ! मेरे वचन को सुनो और पंचेन्द्रियवधादि महान् दुष्कर्मों को मत करो ।

ब्रह्मदत्त द्वारा भोगों को त्यागने की असमर्थता

हे मुनिवर ! जैसे कि तुम मुझे जो सिखा रहे हो, उसे मैं भी जानता हूँ कि ये काम-भोग बन्धन में डालने वाले हैं । किन्तु आर्य ! हम जैसे लोगों के लिए तो ये अत्यन्त दुर्जय हैं ।

हे चित्र ! हस्तिनापुर में उस महान् ऋद्धि वाले चक्रवर्ती को देखकर काम-भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान कर लिया था ।

फिर मैंने उस निदान रूप दोष का प्रतिक्रमण नहीं किया, उसी कर्म का यह फल है कि मैं धर्म को जानता हुआ भी कामभोगों में आसक्त हूँ, उन्हें नहीं छोड़ पा रहा हूँ ।

जैसे दलदल में धँसा हुआ हाथी स्थल को देखकर भी किनारे पर नहीं पहुँच पाता, वैसे ही हम काम-भोगों में आसक्त जन, जानते हुए भी भिक्षुमार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते ।

मुनि द्वारा ब्रह्मदत्त को प्रेरणा :

राजन् ! समय बीतता जा रहा है । रातें बहुत तेजी से दौड़ रही हैं । मनुष्यों के काम-भोग भी नित्य नहीं है । क्षीण पुण्य वाले व्यक्ति को ये कामभोग

पास आकर भी उसी प्रकार छोड़ देते हैं, जिस प्रकार क्षीणफल वाले वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं ।

राजन् ! यदि तू कामभोगों को छोड़ने में असमर्थ है तो आर्यकर्म ही कर । धर्म में स्थिर होकर समस्त प्राणियों के प्रति अनुकम्पाशील बन ।

भोगासक्त ब्रह्मदत्त से निराश मुनि का अन्यत्र गमन–

राजन् ! भोगों को त्यागने की तेरी बुद्धि नहीं है । तू आरम्भ और परिग्रह में अत्यन्त आसक्त हो रहा है । मैंने व्यर्थ ही तेरे को इतनी शिक्षा दी और तुम्हें सम्बोधित किया । अब मैं जा रहा हूँ ।

पांचाल देश के राजा ब्रह्मदत्त ने उस मुनि के वचन का पालन नहीं किया ।

कामभोगों की लालसा से निवृत्त, उत्कृष्ट चारित्री, तपोधनी, महर्षि चित्रमुनि भी सर्वोत्कृष्ट संयम का पालन करके अनुत्तर सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।

ब्रह्मदत्त के पुण्य का सितारा चमक रहा था । आज वह चक्रवर्ती था, परंतु एक समय था, जब वह भी अपने प्राण बचाने के लिए जंगल में जहाँ-तहाँ भटक रहा था ।

एक विकट परिस्थिति में जंगल में किसी ब्राह्मण ने उसे पानी पिलाकर मदद की थी ।

ब्रह्मदत्त ने उसको कहा था, ``आज तो मेरी बुरी हालत है, परंतु भविष्य में मैं सत्ताधीश बनूँ तो मैं जरूर तुझे मदद करूंगा ।''

वर्षों बाद जब ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना है, तब वो ही ब्राह्मण किसी मदद की आशा से चक्रवर्ती के द्वार खटखटा रहा है ।

अपने पूर्व के उपकार को यादकर चक्रवर्ती ने उसे मुँह मांगी वस्तु देने का वरदान दिया ।

चक्रवर्ती के मुख से वरदान की बात सुनकर वह ब्राह्मण खुश हो गया ।

चक्रवर्ती से वरदान मांगने के लिए उसने अपनी पत्नी से सलाह ली ।

ब्राह्मण की पत्नी ने सोचा, ``यदि उन्होंने ज्यादा धन-संपत्ति माँग ली तो कल ये मेरा त्याग ही कर देंगे । इनकी संपत्ति को देख कई स्त्रियाँ इनसे पाणिग्रहण करने के लिए तैयार हो जाएंगी । अतः मुझे तो ये छोड़ ही देंगे ।''

इस प्रकार अपने भविष्य के सुख का विचार कर उस ब्राह्मणी ने अपने पति को सलाह देते हुए कहा, ``हमें प्रतिदिन नए-नए घर पर भोजन मिले और दक्षिणा में एक सोना मोहर मिले । बस, इतना मिलेगा तो हमारा काम हो जाएगा ।''

पत्नी की सलाह से ब्राह्मण ने वैसा ही मांगा ।

एक दिन उस ब्राह्मण ने चक्रवर्ती के घर पर भोजन करने की इच्छा व्यक्त की ।

चक्रवर्ती ने उसे समझाते हुए कहा, ``मेरा भोजन तुम पचा नहीं सकोगे, अतः उसका आग्रह छोड़ दो ।''

परंतु उस ब्राह्मण ने जिद पकड़ ली, ``नहीं, मुझे तो आपके महल में ही भोजन करना है ।''

आखिर उस ब्राह्मण ने चक्रवर्ती के यहाँ भोजन किया । चक्रवर्ती के भोजन से उसे उन्माद चढ़ गया । रात्रि में उसकी कामवासना अतिप्रबल हो उठी । काम में वह अंधा हो गया । उसे पत्नी-बहन व माता का भी कोई विवेक नहीं रहा । उस अविवेक में उसने नहीं करने का काम कर दिया ।

जब उसके काम का नशा उतर गया तो उसे पता चला कि उसने यह क्या कर डाला है ? उसे अपने इस दुर्व्यवहार के बदले खूब पश्चाताप हुआ ।

उसने सोचा, ``मेरी इस पापलीला का मूल तो यह ब्रह्मदत्त ही है, अतः किसी भी उपाय से मुझे उससे बदला लेना ही चाहिए ।'' इस प्रकार बदले की भावना से वह उपाय की शोध करने लगा ।

एक दिन वह ब्राह्मण वाराणसी नगरी के बाहर जंगल में जा रहा था, तभी उसने एक भील को अपनी गिलोल से वृक्ष के पत्तों को बींधते हुए देखा ।

बस, यह दृश्य देखते ही उसने मनोमन एक योजना बना ली ।

उस योजना के अनुसार उसने ब्रह्मदत्त की दोनों आँखें फोड़ने का षड्यंत्र रच लिया ।

उसने उस भील को धन का लालच देकर खरीद लिया ।

``ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की जब सवारी निकले, तब अपनी गिलोल से उसकी दोनों आँखें फोड़ देने की है ।''

धन के लोभ में वह भील भी इस अपकृत्य को करने के लिए तैयार हो गया । कुछ ही दिनों के बाद ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की सवारी निकली । एक जगह एकांत में छिपकर उस भील ने अपनी गिलोल के द्वारा चक्रवर्ती की दोनों आँखें फोड़ दीं ।

गिलोल के निशाने से चक्रवर्ती की दोनों आँखें फूट गईं । छह खंड का अधिपति चक्रवर्ती आँखों से अंधा हो गया ।

ब्रह्मदत्त के सैनिकों ने उस भील को पकड़ लिया ।

पूछताछ करने पर पता चला कि यह तो उस ब्राह्मण का षड्यंत्र था ।

इधर अनेक उपचार करने पर भी ब्रह्मदत्त को अपनी खोई हुई आँखें पुन: प्राप्त नहीं हुई । अब ब्रह्मदत्त के आवेश का पार न रहा ।

आवेश में आकर उसने ब्राह्मण के परिवार के सभी सदस्यों की आँखें निकलवा दी ।

इतना करने पर भी ब्रह्मदत्त का कोप शांत नहीं हो पाया ।

उसने आदेश दिया, ``प्रतिदिन नगर में रहे ब्राह्मणों की आँखें निकालकर थाल भरकर वे आँखें मेरे पास लाई जाएँ ।''

1-2 दिन तो ऐसा ही क्रम चला । एक के अपराध ने संपूर्ण ब्राह्मण जाति को सजा करा दी ।

दो दिन बाद कुशल मंत्रियों ने सोचा, ``इसी क्रम से ब्राह्मणों की आँखें निकाल दी जाएंगी तो दुनिया में ब्राह्मणों के द्वारा हो रहे ज्ञानदान की प्रवृत्ति ही रुक जाएगी । इसका कुछ इलाज शोधना चाहिए ।''

आखिर एक मंत्री ने सुंदर उपाय बताते हुए कहा, ``क्यों न थाली भरकर गूंदों के बीज महाराजा के सामने धरे जायें । आखिर उन्हें दिखता तो नहीं है । बीज का आकार भी आँखों के समान ही है ।''

मंत्री के इस उपाय से सभी सहमत हो गए ।

चक्रवर्ती की आज्ञा के अनुसार रोज थाली भरकर आँखों के स्थान पर गूंदों के बीज राजा को दिये जाने लगे ।

इस प्रकार निरंतर 16 वर्षों तक क्रूर अध्यवसायों के फलस्वरूप वह ब्रह्मदत्त मरकर 7 वीं नरक में चला गया ।

प्रवचन प्रभावक मरुधररत्न-हिन्दी साहित्यकार पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का बहुरंगी-वैविध्यपूर्ण साहित्य

तत्त्वज्ञान विषयक	S.No.
1. जैन विज्ञान	38
2. चौदह गुणस्थान	96
3. आओ ! तत्त्वज्ञान सीखें	79
4. कर्म विज्ञान	102
5. जीव विचार विवेचन	123
6. नव तत्त्व-विवेचन	122
7. दंडक-विवेचन	135
8. तीन-भाष्य	127
9. ध्यान साधना	153
10. लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	194
11. कर्मग्रंथ भाग-2	196
12. कर्मग्रंथ भाग-3	197

प्रवचन साहित्य	S.No.
1. मानवता तब महक उठेगी	8
2. मानवता के दीप जलाएं	9
3. महाभारत और हमारी संस्कृति-भाग-1	18
4. महाभारत और हमारी संस्कृति-भाग-2	19
5. रामायण में संस्कृति का अमर संदेश-भाग-1-2	27-28
7. आओ ! श्रावक बनें !	45
8. सफलता की सीढ़ियाँ	53
9. नवपद प्रवचन	56
10. श्रावक कर्तव्य-भाग-1	74
11. श्रावक कर्तव्य-भाग-2	75
12. प्रवचन रत्न	78
13. प्रवचन मोती	72
14. प्रवचन के बिखरे फूल	103
15. प्रवचनधारा	67
16. आनन्द की शोध	33
17. भाव श्रावक	85
18. पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	97
19. कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	104
20. संतोषी नर-सदा सुखी	87
21. जैन पर्व-प्रवचन	115
22. गुणवान बनो	126
23. सुखी जीवन की चाबियाँ	137
24. पांच प्रवचन	138
25. जीवन शणगार प्रवचन	148
26. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1	169
27. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	170
28. गागर में सागर	173
29. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-1	176
30. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-2	177
31. नवपद आराधना	182
32. प्रवचन-वर्षा	199

धारावाहिक कहानी	S.No.
1. कर्मन् की गत न्यारी	6
2. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है	10
3. तब आंसु भी मोती बन जाते है	24
4. गौतम स्वामी-जंबूस्वामी	46
5. कर्म को नहीं शर्म	49
6. कर्म नचाए नाच	76
7. आग और पानी भाग-1-2	34-35
8. तेजस्वी सितारे	58

छोटी छोटी कहानियां	S.No.
1. मनोहर कहानियाँ	50
2. ऐतिहासिक कहानियाँ	57
3. प्रेरक-कहानियाँ	91
4. सरस कहानियाँ	111
5. मधुर कहानियाँ	98
6. सरल कहानियाँ	142
7. आदर्श कहानियाँ	198

विधि-विधान उपयोगी	S.No.
1. आओ ! प्रतिक्रमण करें	42
2. आओ ! श्रावक बनें	45
3. हंस श्राद्धव्रत दीपिका	48
4. Chaitya-Vandan Sootra	52

5.	विविध-देववंदन	55
6.	आओ ! पौषध करें	71
7.	आओ ! पूजा पढाएँ !	88
8.	Panch Pratikraman Sootra	61
9.	शत्रुंजय यात्रा	36
10.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	73
11.	आओ ! उपधान-पौषध करें	109
12.	विविध-तपमाला	128
13.	आओ ! भावयात्रा करें भाग-1	130
14.	आओ ! भावयात्रा करें भाग-2	166
15.	आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें	136
16.	जैन संघ-व्यवस्था	187

पू.पंन्यासजी म.का साहित्य

		S.No.
1.	वात्सल्य के महासागर	1
2.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	15
3.	अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव	44
4.	बीसवीं सदी के महान् योगी	100
5.	अजातशत्रु अणगार	161
6.	महामंत्र की साधना	160
7.	नवकार-चिंतन	168
8.	बीसवीं सदी के महान् योगी की अमर-वाणी	101
9.	आध्यात्मिक पत्र	146
10.	परम-तत्व की साधना भाग-1	171
11.	परम-तत्व की साधना भाग-2	178
12.	परम-तत्व की साधना भाग-3	179
13.	आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-1	183
14.	आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-2	186
15.	आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3	193
16.	महान् योगी पुरुष	201

अन्य प्रेरक साहित्य

		S.No.
1.	महान् ज्योतिर्धर	86
2.	मिच्छामि दुक्कडम्	60
3.	क्षमापना	69
4.	सवाल आपके जवाब हमारे	37
5.	शंका और समाधान-1	66
6.	शंका-समाधान-भाग-2	118
7.	शंका-समाधान-भाग-3	147
8.	धरती तीरथ री	68

9.	चिंतन रत्न	114
10.	महावीरवाणी	112
11.	जैन शब्द कोश	157
12.	नया दिन नया संदेश	158
13.	तीर्थ यात्रा	159
14.	रत्न संदेश भाग-1	172
15.	रत्न संदेश भाग-2	174
16.	बाली चातुर्मास विशेषांक	180
17.	उपधान स्मृति विशेषांक	181
18.	संस्मरण	190
19.	विवेकी बनों !	192
20.	अमृत रस का प्याला	200

वैराग्यपोषक साहित्य

		S.No.
1.	मृत्यु-महोत्सव	51
2.	श्रमणाचार विशेषांक	54
3.	सद्गुरु-उपासना	113
4.	चिंतन-मोती	90
5.	मृत्यु की मंगल यात्रा	16
6.	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचन भाग-1	13
7.	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचन भाग-2	14
8.	भव आलोचना	124
9.	वैराग्य शतक	140
10.	इन्द्रिय पराजय शतक	156
11.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	191
12.	समाधि-मृत्यु	195

गुजराती साहित्य

		S.No.
1.	जीवन ने तुं जीवी जाण	62
2.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	25
3.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	63

चरित्र-कथाएं

		S.No.
1.	जिनशासन के ज्योतिर्धर	81
2.	महासतियों का जीवन संदेश	93
3.	[illegible] चरित्र-भाग 1	188

शासन के ज्योतिर्धर
सतियों का जीवन संदेश धर
स तीर्थंकर चरित्र- 1 संदेश

ACHA... NDIR

6. पारस प्यारो लागे 99
7. महान् चरित्र 129
8. भगवान महावीर का सचित्र जीवन 83
9. भगवान महावीर 70
10. प्रात:स्मरणीय महापुरुष-2 150
11. प्रात:स्मरणीय महापुरुष-2 150
12. प्रात:स्मरणीय महासतियाँ-1 151
13. प्रात:स्मरणीय महासतियाँ-2 152
14. श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र 134
15. हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल 184
16. महान् ज्योतिर्धर 86
17. श्रमणशिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी 119
18. बारह चक्रवर्ती 202

प्रभु भक्ति प्रधान साहित्य **S.No.**

1. आनंदघन चोबीसी 7
2. अंखिया प्रभुदर्शन की प्यासी 22
3. भक्ति से मुक्ति 41
4. विविध देववंदन 55
5. प्रभु दर्शन सुख संपदा 84
6. तीर्थ यात्रा 159
7. आओ ! पूजा पढाएं 88
8. विविध पूजाएं 125
9. प्रभो ! मन मंदिर पधारो ! 110

युवा-युवति प्रेरक **S.No.**

1. युवानो ! जागो 12
2. युवा संदेश 26
3. जीवन की मंगल यात्रा 17
4. तब चमक उठेगी युवा पीढी 20
5. युवा चेतना विशेषांक 23
6. जीवन निर्माण (विशेषांक) 30
7. यौवन-सुरक्षा विशेषांक 32
8. सन्नारी विशेषांक 59
9. जैनाचार विशेषांक 47
10. आहार विज्ञान विशेषांक 39
11. माता-पिता 77
10. आहार: क्यों और कैसे ? 82
13. ब्रह्मचर्य 106
14. अमृत की बूंदें 64
15. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद 80

अंग्रेजी साहित्य **S.No.**

1. The Message for the Youth 31
2. How to live true life ? 40
3. The Light of Humanity 21
4. Youth will Shine then 121
5 Duties towards Parents 95
6. Pearls of Preaching 167
7. The Way of Metaphysical Life 163
8. My Parents 175

मराठी साहित्य **S.No.**

1. राग म्हणजे आग (मराठी) 108
2. आई वडीलांचे उपकार 92
3. अध्यात्माचा सुगंध 155
4. विखुरलेले प्रवचन मोती 117
5. आई चे वात्सल्य 185

अनुवाद-विवेचनात्मक **S.No.**

1. सामायिक सूत्र विवेचना 2
2. भाव सामायिक 107
3. चैत्यवंदन सूत्र विवेचना 3
4. भाव-चैत्यवंदन 120
5. आलोचना सूत्र विवेचना 4
6. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना 5
7. भाव प्रतिक्रमण-भाग-1 132
8. भाव प्रतिक्रमण-भाग-2 133
9. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो 11
10. श्रावक जीवन-दर्शन 29
11. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन 94
12. आओ संस्कृत सीखें भाग-1 144
13. आओ संस्कृत सीखें भाग-2 145
14. श्रावक आचार दर्शक 154
15. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1 164
16. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2 165

प्रवचन प्रभावक परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित

202 पुस्तकों में से प्राप्य हिन्दी भाषा में जैन धर्म का अमूल्य खजाना

Sr. No.	पुस्तक क्र.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	13-14	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना-भाग-1-2	140/-
2.	34-35	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
3.	36	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
4.	42	भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)	40/-
5.	61	Panch Pratikraman Sootra	60/-
6.	84	प्रभु दर्शन सुख संपदा	60/-
7.	97	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	100/-
8.	100	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
9.	104	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	150/-
10.	109	आओ ! उपधान पौषध करें !	45/-
11.	118	शंका समाधान भाग-2	40/-
12.	123	जीव विचार विवेचन (तृतीय आवृत्ति)	60/-
13.	128	विविध-तपमाला	100/-
14.	136	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	90/-
15.	140	वैराग्य शतक	80/-
16.	141	गुणानुवाद	70/-
17.	144	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	60/-
18.	145	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	70/-
19.	146	आध्यात्मिक पत्र	60/-
20.	153	ध्यान साधना	40/-
21.	156	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-
22.	161	अजातशत्रु अणगार	100/-
23.	163	The way of Metaphysical Life	60/-
24.	164	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/
25.	165	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	8[illegible]
26.	166	आओ ! भाव यात्रा करें !! भाग-2	

Sr. No.	पुस्तक क्र.	पुस्तक का नाम	मूल्य
27.	167	Pearls of Preaching	60/-
28.	168	नवकार चिंतन	60/-
29.	169	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1	64/-
30.	170	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	70/-
31.	172	रत्न-संदेश-भाग-1	150/-
32.	174	रत्न-संदेश-भाग-2	150/-
33.	175	My Parents	60/-
34.	176	श्रावकाचार-प्रवचन भाग-1	125/-
35.	177	श्रावकाचार-प्रवचन भाग-2	125/-
36.	178	परम-तत्व की साधना भाग-2	150/-
37.	179	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
38.	182	नवपद आराधना	80/-
39.	183	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
40.	186	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
41.	188	चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-1	150/-
42.	189	चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-2	150/-
43.	190	संस्मरण	50/-
44.	191	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	70/-
45.	192	विवेकी बनों !	90/-
46.	193	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
47.	194	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
48.	195	समाधि मृत्यु	50/-
49.	102	कर्मग्रंथ (भाग-1)	100/-
50.	196	कर्मग्रंथ (भाग-2)	70/-
51.	[illegible]	कर्मग्रंथ (भाग-3)	55/-
[illegible]	[illegible]	[illegible]ियाँ	60/-
[illegible]	[illegible]	[illegible]	60/-
[illegible]	[illegible]	[illegible]ाला	300/-
[illegible]	[illegible]	[illegible]	85/-
[illegible]	[illegible]	[illegible]	64/-

Shubhay 98205 30299